सत्यार्थ प्रकाशः

समीक्षा की समीक्षा

सतीश चन्द गुप्ता

Satyarth Prakash: Sameeksha ki Sameeksha- II editon
Hindi Font - Krutidev 025
Website: satishchandgupta.blogspot.com

© सर्वाधिकार सुरक्षित

नाम पुस्तक : **सत्यार्थ प्रकाशः**
समीक्षा की समीक्षा

Satyarth Prakash: Samiksha ki Samiksha

लेखक : ***सतीश चन्द गुप्ता***
खतौली, जिला मु० नगर

E-mail- satishgpt50@gmail.com
Web.-http://satishchandgupta.blogspot.com

संशोधित संस्करण : मई - २०११
मूल्य - १०० रू०

नोटः हर प्रकार के विवादों के लिए केवल न्यायालय मुजफ्फरनगर ही अधिकृत ।

प्रकाशक : **सनातन संदेश संगम**
मौहल्ला सोत, रुड़की

"जो मनुष्य पक्षपाती होता है, वह अपने असत्य को भी सत्य और दूसरे विरोधी मत वाले के सत्य को भी असत्य सिद्ध करने में प्रवृत्त होता है। इसलिए वह सत्य मत को प्राप्त नहीं हो सकता।"

"स्वामी दयानंद सरस्वती"

"ईशा वास्यमिदं सर्व यत्किञ्चजगत्यां जगत्।" (यजु०, ४०-१)
(यह सम्पूर्ण ब्रह्मांड ईश्वरीय सत्ता से परिव्याप्त है।)

निवेदन

यह ब्रह्मांड जिसमें हम रहते हैं, अत्यंत विशाल, विस्तृत और अद्भुत है। इसकी विशालता का अंदाज़ा इस बात से लगाया जा सकता है कि हमारा सूर्य, जो हमारे सौर मंडल का मुखिया है, हमारी पृथ्वी से १३ लाख गुना बड़ा और लगभग १५ करोड़ कि.मी. दूर है। हमारा यह सूर्य लगभग ६ लाख ६० हजार कि.मी. प्रति घंटा की गति से दौड़ रहा है। इस ब्रह्मांड में न जाने कितने आकाशीय पिंड हमारे सूर्य से लाखों गुना बड़े हैं और न जाने कितने सौर मंडल हैं। करोड़ों सौर मंडलों से बनने वाली एक आकाश गंगा (Galaxy) है जिसमें अरबों-ख़रबों तारे-सितारे हैं। इस ब्रह्मांड में न जाने कितनी करोड़ आकाश गंगाएं हैं। हमारा सूर्य जिस आकाश गंगा में स्थित है उसका केन्द्र सूर्य से लगभग ३२००० प्रकाश वर्ष दूर है, जबकि एक प्रकाश वर्ष की लम्बाई ६४६० अरब कि.मी. है। हर आकाशीय पिंड गतिमान है। सूर्य, चांद, पृथ्वी, तारे सब गतिमान हैं। आकाशीय पिंडों की गति में एक नियमबद्धता है। दिन-रात के प्रत्यावर्तन में नियमबद्धता है। वनस्पति जगत में नियमबद्धता है। प्राणी जगत में नियमबद्धता है।

कितना विचित्र है यह ब्रह्मांड! देखकर आश्चर्य होता है। प्रश्न यह है कि जहाँ नियम हो, क्या वहाँ नियामक नहीं होना चाहिए? जहाँ सुव्यवस्था हो, क्या वहाँ व्यवस्थापक नहीं होना चाहिए? ब्रह्मांड की नियमबद्धता इस बात का प्रमाण है कि कोई चेतन शक्ति इसका संचालन कर रही है। यहाँ की नियमबद्धता इस बात का भी प्रमाण है कि वह परम शक्ति एक है। चेतन शक्ति अगर एक से अधिक होती तो इतनी विचित्र और अद्भुत सुनियोजित और अनुशासनबद्धता न होती।

इस अति विशाल ब्रह्मांड में हमारी पृथ्वी, जिसका व्यास १२७५४ कि.मी. और वजन $6x10^{24}$ कि.ग्राम है, का अस्तित्व बालू के एक कण से अधिक नहीं है। अब ज़रा सोचिए! इस ब्रह्मांड में हम मनुष्यों का अस्तित्व कितना होगा? आख़िर हम को क्यों पैदा किया गया है ? क्या हम बिना किसी रचयिता के और बिना किसी उद्देश्य के इस ब्रह्मांड में आ गए हैं? क्या हम पर कोई नियम-कानून लागू नहीं होता?

यह सच है कि इस ब्रह्मांड का एक रचयिता है। वही हम सब का स्रष्टा, स्वामी, इष्ट और उपास्य है। परमेश्वर, अल्लाह, गॉड उसी एक परम चेतन शक्ति के नाम हैं। हम सब एक माँ-बाप की संतान हैं। हम सब भाई-भाई हैं। उस एक अति-प्राकृतिक सत्ता ने सृष्टि का सृजन एक महान उद्देश्य के लिए किया है। उस एक अदृश्य परम सत्ता ने अपना संदेश कुछ पवित्र आत्माओं और पुस्तकों द्वारा हम तक पहुंचाया है, वरना हमें कैसे पता चलता कि कोई अदृश्य परम सत्ता इस ब्रह्मांड का संचालन कर रही है। हम सब मनुष्यों का स्रष्टा एक है। इसीलिए हम सब मनुष्यों का जीवन लक्ष्य एक है। उस उच्च लक्ष्य को प्राप्त करने का मार्ग एक है। उस मार्ग को धर्म कहते हैं। सब मनुष्यों का धर्म एक है। धर्म ईश्वरीय जीवन व्यवस्था का नाम है। यहाँ मनुष्यों में संघर्ष, टकराव और भेदभाव का मूल कारण सृष्टि और मानव जीवन के उद्देश्य को सच्चे अर्थों में न समझ पाना है।

प्रस्तुत पुस्तक में आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानंद सरस्वती द्वारा प्रतिपादित मानव जीवन से जुड़े कुछ महत्वपूर्ण विषयों और धारणाओं को सादी और सरल भाषा में विज्ञान और विवेक की कसौटी पर कसने का प्रयास किया गया है, जिनका प्रतिपादन स्वामी जी ने अपने महान ग्रंथ 'सत्यार्थ प्रकाश' में किया है। यह मेरा संक्षिप्त विश्लेषण है। इसको पढ़ने से पहले पाठक 'सत्यार्थ प्रकाश' का गहन अध्ययन अवश्य कर लें, ताकि इस पुस्तक की विषय-वस्तु को समझने में आसानी हो। पाठकों से निवेदन है कि इसके विषयों को निष्पक्ष और स्वतंत्र भाव से पढ़ें और विचार करें कि जिन आस्थाओं और धारणाओं के आधार पर हम अपना जीवन गुज़ार रहे हैं, कहीं वे धारणाएं अतार्किक और अवैज्ञानिक तो नहीं हैं? पूर्वाग्रह ने कहीं हमें विवेकहीन तो नहीं बना दिया है? स्वयं को श्रेष्ठ और प्रबुद्ध और दूसरों को हीन और अल्पज्ञ समझने की दंभपूर्ण और आग्रही वृत्ति ने

कहीं हमें सच्चाई का विरोधी तो नहीं बना दिया है? कहीं हम आत्म-मुग्धता और आत्म-तुष्टि में आत्मवंचना (Self Deception) का शिकार तो नहीं हो गए हैं? यहाँ मेरा अभिप्राय मात्र इतना है कि हमारा चिंतन सकारात्मक, स्वस्थ और वैज्ञानिक हो, हमारी सोच विश्वस्तरीय हो न कि क्षेत्रीय, हमारी आस्थाएं और धारणाएं युक्ति-युक्त और विशुद्ध हों, हम सत्यासत्य का निर्णय वाद-विवाद से नहीं बल्कि संवाद (Interaction) से करें ताकि सांप्रदायिकता और दुराभाव की जगह समन्वय और सद्भाव का वातावरण विकसित हो।

मई २०११ ***सतीश चन्द गुप्ता***

विषयानुक्रम

प्राक्कथन

किसी महापुरुष के विचारों का अध्ययन करने से पहले यह आवश्यक है कि हम पहले उसके जीवन की रूपरेखा, शिक्षा, संस्कार, तात्कालिक परिस्थितियाँ और मानस पर पड़े प्रभाव को जानने का प्रयास करें, ताकि विचारों को समझने में आसानी हो। स्वामी दयानंद सरस्वती का जन्म गुजरात राज्य के टंकारा ग्राम में सन् १८२४ ई० में हुआ था। इनके बचपन का नाम मूलशंकर, माता का नाम शोभाबाई और पिता का नाम अम्बाशंकर था। मूलशंकर एक ऐसे नैष्ठिक ब्राह्मण परिवार में पैदा हुआ जो अपनी धार्मिक आस्थाओं और सामाजिक रीति-रिवाजों और परंपरागत पूजा-उपासनाओं का कड़ाई से पालन करने पर ज़ोर देता था। मूलशंकर का शैशवकालीन पालन-पोषण और प्रारम्भिक शिक्षा भी परंपरागत ढंग से हुई, जिसमें सांप्रदायिक विश्वासों को यथावत ग्रहण करना और पूजा-पाठों के रुढ़िबद्ध तरीकों का पूर्णरूपेण पालन करना आवश्यक था। मगर जिस संकीर्ण और रूढ़िवादी वातावरण में जन्म लेकर और पलकर बालक मूलशंकर बड़ा हुआ, उस परंपरानुपालन से वह संतुष्ट न हो सका। उसके जीवन में कुछ ऐसी घटनाएं घटी कि उसका दिल सांसारिक जीवन से उचट गया। मूलशंकर सन् १८४६ ई० में लगभग २२ वर्ष की आयु में घर से निकल गया। १४-१५ वर्षों तक पहाड़ों, कंदराओं और जंगलों की खाक छानने के बाद संन्यासियों के एक संप्रदाय से संन्यास की शिक्षा ग्रहण करके मूलशंकर, स्वामी दयानंद सरस्वती बन गया।

स्वामी दयानंद सरस्वती ने सन् १८६० ई० में मथुरा में प्रज्ञाचक्षु दंडी स्वामी विरजानंद (१७६७-१८६८) का शिष्यत्व ग्रहण किया। लगभग ढाई साल गुरु के सान्निध्य में रहने के बाद स्वामी दयानंद सरस्वती गुरु की अनुमति से भारत भ्रमण के लिए निकल गए। इस क्रम में स्वामी

दयानंद सरस्वती सन् १८७२ ई० में कलकत्ता पहुंचे। वहाँ उनकी भेंट ब्रह्मसमाजी देवेन्द्रनाथ ठाकुर और केशवचंद्र सेन से हुई। इन दोनों महापुरुषों का झुकाव ईसाइयत और पाश्चात्य जीवन पद्धति की ओर था। बुनियादी मतभेदों के कारण स्वामी दयानंद उनके साथ मिलकर काम न कर सके और अपना एक अलग संगठन बनाने का निर्णय लिया।

यह वह जमाना था जब यूरोपीय चिंतन भारतीय जनमानस को उद्वेलित कर रहा था। मुग़ल साम्राज्य ध्वस्त हो चुका था। अंग्रेज़ी शासन की जड़े मज़बूत हो चुकी थी। विचार-अभिव्यक्ति की पूर्ण स्वतंत्रता थी। ईसाई प्रचारकों ने देश के कोने-कोने में अपने धर्म के प्रचार केन्द्र स्थापित कर लिए थे। हिंदू समाज में सहस्रों ढोंग, पाखंड, मिथ्या रूढ़ियाँ, जटिल कर्मकांड, मूढ़ धारणाएं और अंध विश्वास प्रचलित थे। धर्म के नाम पर रोजी-रोटी कमाने वाले पंडे-पुजारियों, महंतों और मठाधीशों की भरमार थी। हिंदू समाज में उपस्थित और प्रचलित मूर्खतापूर्ण रीति-रिवाजों और कर्मकांडों से व्यथित होकर हिंदू समाज के लोग स्वेच्छा से ईसाइयत और इस्लाम धर्म की तरफ जा रहे थे। दूसरी ओर अपने धर्म के मौलिक तत्वों और तथ्यों से अनभिज्ञ और अपरिचित साधारण हिंदू वर्ग धर्म की आलोचना और ईसाई प्रचारकों के आक्रमणों का उत्तर देने में सर्वथा अक्षम था।

कुछ इसी प्रकार की परिस्थितियों में स्वामी दयानंद सरस्वती ने एक प्रबल आंदोलन की आधारशिला बम्बई में १० अप्रैल १८७५ ई० को रखी और उसे 'आर्यसमाज' का नाम दिया। स्वामी दयानंद सरस्वती ब्रह्म समाज के अनुयायियों को प्रच्छन्न (छिपा हुआ) ईसाई समझते थे मगर केशवचंद्र सेन से मिलने के बाद उनके विचारों में काफी परिवर्तन आया। जब महर्षि दयानंद कलकत्ता गए थे, वहाँ वे केशवचंद्र सेन के साथ ही ठहरे थे। उन दिनों स्वामी जी 'सत्यार्थ प्रकाश' की रचना संस्कृत में कर रहे थे। केशवचंद्र सेन के आग्रह पर ही स्वामी जी ने अपने महत्वपूर्ण ग्रंथ 'सत्यार्थ प्रकाश' की रचना हिन्दी भाषा में की। केशवचंद्र सेन के आग्रह पर ही स्वामी जी ने वस्त्रधारण करना प्रारम्भ किया वरना इससे पहले शरीर पर कोई वस्त्र धारण न करके 'कौपिनवंतः खलु भाग्यवंतः' के अनुसार केवल कौपीन ही पहनते थे।

सन् १८७३ ई० में जब स्वामी जी की अवस्था ४६ वर्ष की

थी, तब उन्होंने हिन्दी में बोलना-लिखना आरम्भ किया था। उससे पहले तो वे गुजराती और संस्कृत भाषा ही बोलते थे। 'सत्यार्थ प्रकाश' का प्रथम संस्करण स्वामी दयानंद ने ५१ वर्ष की अवस्था में लिखा था। द्वितीय संस्करण शुद्ध करके स्वामी जी ने ५८ वर्ष की अवस्था में प्रकाशित कराया। स्वामी जी ने कुल ५९ वर्ष की आयु पाई। स्वामी दयानंद जी का देहवसान दीपावली के दिन ३० अक्टूबर सन् १८८३ ई० को राजस्थान के अजमेर शहर में हुआ।

स्वामी दयानंद सरस्वती ने 'वेदों की ओर वापसी' का आह्वान किया, मगर यहाँ यह तथ्य विचारणीय है कि वेदों के रचनाकाल को लेकर वेद विद्वानों में मतैक्य नहीं है। अजीब विडंबना यह है कि मत वैभिन्य हजार या दो हजार वर्षों का नहीं बल्कि लाखों-करोड़ों वर्षों का है। आर्यसमाज के संस्थापक के मतानुसार जहाँ वेदोत्पत्ति को सन् २०१० तक, एक अरब छियानवे करोड़ आठ लाख तरेपन हजार एक सौ दस (१९६०८५३११०) वर्ष हो चुके हैं (ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका अथवेदोत्पत्ति विषय और सत्यार्थ प्रकाश, ८-६४), वहीं कुछ विद्वानों के मतानुसार वेदों का रचनाकाल ई० पू० चार हजार वर्षों से अधिक नहीं है।

जिस ग्रंथ के रचनाकाल को लेकर इतना अधिक मतभेद हो, उस ग्रंथ को कैसे प्रमाणित माना जा सकता है? दूसरा तथ्य यह भी विचारणीय है कि स्वामी जी ने वेदों के निर्देशन में अपने महान ग्रंथ में जितनी भी धारणाएं और मान्यताएं प्रतिपादित और स्थापित करने का प्रयास किया है, वे सभी अवैज्ञानिक और दोषपूर्ण तो हैं ही, अवैदिक भी हैं। सृष्टि विषयक सिद्धांत, पुनर्जन्म, स्वर्ग-नरक, जीव हत्या, मांसाहार, वनस्पति और अंतरिक्ष विज्ञान आदि विषयों पर स्वामी जी के मंतव्य और वेदार्थ अतार्किक और अज्ञानपूर्ण तो हैं ही, साथ ही उनमें प्रचुर विरोधाभास और असंतुलन भी पाया जाता है। तीसरा तथ्य यह भी विचारणीय है कि स्वामी जी द्वारा मुक्ति का जो मार्ग बताया गया है, स्वामी जी की स्वयं की जीवन शैली और आचरण उसके विरूद्ध था। यह सच है कि 'सत्यार्थ प्रकाश' के कर्ता ने विराट हिंदू समाज में उपस्थित अनेक धार्मिक और सामाजिक कुप्रथाओं और वर्गगत संकीर्णताओं को दूर करने का सराहनीय कार्य किया है और वेदों के निर्देशन में एकेश्वर वाद का प्रतिपादन और मूर्ति पूजा, अवतारवाद, तीर्थों और अनेक पौराणिक आडंबरों का खंडन किया। इसके साथ यह भी सच है कि स्वामी जी को वेदों का समुचित ज्ञान

नहीं था, अगर स्वामी जी को वेदों का समुचित ज्ञान होता तो उनके द्वारा स्थापित धारणाएं विज्ञान और विवेक की कसौटी पर असत्य साबित न होती।

स्वामी दयानंद सरस्वती ने अपने ग्रंथ में विभिन्न मत-मतांतरों की जो निंदा और कटु आलोचना की है और उसमें जिस तरह की भाषा का प्रयोग किया है, उससे कथित विद्वान की विद्वत्ता पर प्रश्नचिन्ह लगता है। 'सत्यार्थ प्रकाश' की भाषा अति शुष्क और नीरस तो है ही, उसमें न समसरता है और न ही निरंतरता (Continuity), साथ ही वह अशिष्ट, अहंकारपूर्ण और निकृष्ट भी है। भाषा, तथ्य और विषयवस्तु की दृष्टि से स्वामी जी ने अपने महान ग्रंथ में न केवल साहित्यिक मर्यादाओं का, बल्कि नैतिक मूल्यों का भी उल्लंघन किया है। 'सत्यार्थ प्रकाश' की भाषा और तथ्यों से लेखक के बौद्धिक और नैतिक स्तर का अंदाज़ा बखूबी लगाया जा सकता है। सत्यासत्य के निर्णय के लिए आलोचना और विश्लेषण करना गुनाह नहीं है, बशर्ते कि वह तार्किक और तथ्यपरक हो, उसकी भाषा शिष्ट और मर्यादित हो, उसमें दंभ और दुराग्रह न हो। ईर्ष्या, द्वेष, अहंकार और दुर्भावना पर आधारित कोई भी ग्रंथ सत्य का प्रतिनिधित्व नहीं कर सकता। 'सत्यार्थ प्रकाश' की न भाषा लेखक की विद्वता का प्रमाण है और न ही तथ्य। अफ़सोस का विषय है कि आज विज्ञान और वैश्विक दौर में भी दयानंदी आस्था और धारणा के लोग 'सत्यार्थ प्रकाश' में अपनी अंध आस्था और विश्वास बनाए हुए हैं। कितना अच्छा होता अगर वे दुराग्रह और सांप्रदायिकता से ऊपर उठकर ज़िंदगी के मक़सद और सच्चाई को समझने का प्रयास करते।

सत्यार्थ प्रकाशः भाषा, तथ्य और विषयवस्तु

आर्य समाज संस्था के निर्माता आचार्य स्वामी दयानंद सरस्वती द्वारा रचित अनेक ग्रंथों में 'सत्यार्थ प्रकाश' मुख्य ग्रंथ है। स्वामी जी द्वारा प्रणीत यह महान ग्रंथ उनके द्वारा तीन हजार ग्रंथों के गहन अध्ययन और अड़तीस वर्षों के लम्बे चिंतन और अनुभव का सार है। 'सत्यार्थ प्रकाश' आर्यसमाज संस्था की रीढ़ है। आर्य समाजियों को स्वामी जी की इस पुस्तक पर गर्व है। 'सत्यार्थ प्रकाश' का प्रथम संस्करण सितम्बर १८७५ ई० में तथा भाषा और व्याकरण आदि की शुद्धि और कुछ परिवर्धन के बाद द्वितीय संस्करण सन् १८८२ ई० में प्रकाशित किया गया। स्वामी जी ने यह पुस्तक अपने हाथों से नहीं लिखी थी, बल्कि बोल-बोल कर लिखवाई थी और मात्र साढ़े तीन माह में इसे पूरा कर लिया गया था। 'सत्यार्थ प्रकाश' में कुल चौदह समुल्लास हैं। इसकी मूल भाषा हिन्दी है।

महर्षि दयानंद ने वैदिक सिद्धांतों के प्रतिपादन हेतु इस महत्वपूर्ण ग्रंथ की रचना की थी। इसके प्रथम संस्करण में केवल बारह समुल्लास थे। बाद के संस्करण में इसमें दो समुल्लास और जोड़ दिए गए। इस पुस्तक में सभी मत-मतांतरों की कटु और अपमानजनक शब्दों में निंदा और आलोचना की गई है। बताया जाता है कि स्वामी दयानंद तर्कसंगत विचारों के पोषक थे। 'सत्यार्थ प्रकाश' को स्वामी जी के प्रगतिशील विचारों का संकलन बताया जाता है।

किसी भी पुस्तक की दो बड़ी खूबियां होती हैं। पहली यह कि उसकी भाषा-शैली सरल, सुबोध, शिष्ट, प्रवाहपूर्ण और भावात्मक हो। दूसरी यह कि उसमें प्रस्तुत तथ्य और विषय वस्तु तार्किक, बौद्धिक, वैज्ञानिक और व्यावहारिक हो। जहाँ तक 'सत्यार्थ प्रकाश' का सवाल है, यह पुस्तक उक्त दोनों बिन्दुओं पर अत्यंत निम्न और घटिया है।

मुझे तो संदेह होता है कि यह पुस्तक अपने मूल में भी है या नहीं? अगर यह पुस्तक आज अपने मूल में नहीं है तो फिर कोई सवाल पैदा नहीं होता। लेकिन अगर यह पुस्तक अपने मूल ही में है तो फिर यह सवाल पैदा होता है कि क्या यह पुस्तक किसी वेद विद्वान, व्याकरण के प्रकांड पंडित और आचार्य की कृति हो सकती है ?

भाषा शैली किसी लेखक की योग्यता और विद्वत्ता की प्रमाण होती है। जिस व्यक्ति की विद्वत्ता की धाक हो, जो एक संगठन का निर्माता आचार्य हो, क्या वह इतनी घिनौनी और शर्मनाक भाषा का प्रयोग कभी कर सकता है ? जैसी भाषा शैली का प्रयोग अंतिम चार समुल्लासों में किया गया है। यहाँ उदाहरणार्थ कुछ अंश प्रस्तुत हैं :-

'देखो इन गवरगण्ड पोपो की लीला', 'कथा का गपोड़ा भंग की लहरी में उड़ाया', 'महंत पुजारी पण्डे आँख के अंधे गांठ के पूरे', 'वाह रे वाह! भागवत के बनाने वाले लाल भुजक्कड़', 'गपोड़े का भाई गपोड़ा', 'क्या घूड़ अच्छे हैं', 'जैसा प्रेतनाथ वैसा भूतनाथ', 'ऐसी गपड़चौथ क्यों लिखता', 'कितनी पामरपन की बात है', 'यह बात बेर बेचने वाली कूंजड़ी के समान है', 'वाह रे वाह! विद्या के शत्रुओं', 'वाह ईसाइयों के ईश्वर! क्या बड़ा डाक्तर है।', 'ईसाइयों का ईश्वर अखाड़मल्ल है', 'अण्डवण्ड कथा गाई', 'यह ईश्वर क्या यह तो बड़ा खिलाड़ी है', 'अब देखिए! लम्बे चौड़े गपोड़े', 'यह देखो लड़केपन की बात', 'अब देखिए खुदा की अल्पज्ञता', कुरआन का बनाने वाला निरक्षर भट्ट है' 'खुदा बड़ा गड़बड़िया है', 'खुदा शैतानों का भी शैतान है', 'खुदा झूठ का प्रवर्तक है', 'घसड़ पसड़', 'गड़ बड़ाध्याय', 'वाह जी वाह देखो जी! मुसलमानों का खुदा भानुमती के समान खेल रहा है', 'गवरगण्ड राजा के तुल्य', 'अंधेर नगरी गवरगण्ड राजा', 'गदर मचाने वाले खुदा और नबी', 'यह कुरआन का खुदा और नबी दोनों लड़ाईबाज़ थे', 'जिसका खुदा धोखेबाज उसके उपासक लोग धोखेबाज क्यों न हों ?', 'कुरआन किसी कपटी-छली का बनाया हुआ होगा', 'वाह जी वाह! कैसा खुदा और कैसे पैग़म्बर दयाहीन', 'खुदा क्या ठहरा मानो मुहम्मद साहेब के लिए बीवियां लाने वाला नाई ठहरा', 'वाह जी वाह! कुरआन के बनाने वाले फिलासफर!'।

यह तो थी 'सत्यार्थ प्रकाश' की अशिष्ट, निकृष्ट और अहंकार पूर्ण भाषा शैली की एक झलक। अब ज़रा निम्न तथ्यों पर भी एक नज़र डालिए कि ये कितने ठोस, वैज्ञानिक और व्यावहारिक

हैं ?

वेदों के ज्ञाता महर्षि दयानंद सरस्वती ने 'सत्यार्थ प्रकाश' में लिखा है:-

१. प्रसूता छह दिन के पश्चात् बच्चे को दूध न पिलावे। (२-३) (४-६८)
२. २४ वर्ष की स्त्री और ४८ वर्ष के पुरुष का विवाह उत्तम है अर्थात् स्वामी जी के मतानुसार लड़के की उम्र लड़की से दूना या ढाई गुना होनी चाहिए। (३-३१) (४-२०) (१४-१४३)
३. गर्भ स्थिति का निश्चय हो जाने पर एक वर्ष तक स्त्री-पुरुष का समागम नहीं होना चाहिए। (२-२) (४-६५)
४. जब पति अथवा स्त्री संतान उत्पन्न करने में असमर्थ हों तो वह पुरुष अथवा स्त्री नियोग द्वारा संतान उत्पन्न कर सकते हैं। (४-१२२ से १४६)
५. यज्ञ और हवन करने से वातावरण शुद्ध होता है। (४-६३)
६. मांस खाना जघन्य अपराध है। मांसाहारियों के हाथ का खाने में आर्यों को भी यह पाप लगता है। पशुओं को मारने वालों को सब मनुष्यों की हत्या करने वाले जानिएगा। (१०-११ से २५)
७. मुर्दों को गाड़ना बुरा है क्योंकि वह सड़कर वायु को दुर्गन्धमय कर रोग फैला देते हैं। (१३-४१, ४२)
८. लघुशंका के पश्चात् कुछ मुत्रांश कपड़ों में न लगे, इसलिए ख़तना कराना बुरा है। (१३-३१)
९. दंड का विधान ज्ञान और प्रतिष्ठा के आधार पर होना चाहिए। (६-२७)
१०. ईश्वर के न्याय में क्षणमात्र भी विलम्ब नहीं होता। (१४-१०५)
११. ईश्वर अपने भक्तों के पाप क्षमा नहीं करता। (७-५२)
१२. सूर्य केवल अपनी परिधि (Axis) पर घूमता है किसी लोक के चारों ओर (Orbit) नहीं घूमता। (८-७१)
१३. सूर्य, चन्द्र, तारे आदि पर भी मनुष्य आदि सृष्टि हैं। (८-७३)
१४. सिर के बाल रखने से उष्णता अधिक होती है और उससे बुद्धि कम हो जाती है। (१०-२)
१५. वेदों का अवतरण ऋषियों की मातृभाषा में न होकर संस्कृत भाषा में हुआ। संस्कृत भाषा उस समय किसी देश अथवा क़ौम की भाषा नही थी। (७-८९) (७-९२)

ज़रा सोचिए ! क्या उक्त तथ्य वास्तव में बौद्धिक, वैज्ञानिक और व्यावहारिक हैं ?

वेदों के ज्ञाता स्वामी दयानंद सरस्वती ने वेदों के निर्देशन में लिखा है :-

१. ईश्वर जगत् का निमित्त (Efficient Cause) कारण है, उपादान कारण (Material Cause) नहीं है। (७-४५) (८-३)

वैदिक धर्म एकेश्वरवाद का प्रतिपादन करता है और उसे सृष्टिकर्ता भी मानता है, मगर स्वामी दयानंद ने कहा कि उपादान कारण के बिना जगत् की उत्पत्ति संभव नहीं है। ईश्वर, जीव और प्रकृति तीनों अनादि हैं। ईश्वर मात्र शिल्पी है, उसने सृष्टि का विकास किया है, सृजन नहीं किया। अर्थात् जिस प्रकार कुम्भकार ने घड़ा बनाया, मिट्टी नहीं बनाई, ठीक इसी प्रकार परमेश्वर ने जगत् बनाया। प्रकृति और जीव दोनों संसाधन (Material) पहले से मौजूद थे।

२. सृष्टि का प्रारम्भ नहीं है अर्थात् सृष्टि का कोई आदि सिरा नहीं है। (८-५३)
३. सम्पूर्ण मानवता एक माँ-बाप की संतान नहीं है। (८-५१)
४. वेद आवागमनीय पुनर्जन्म की अवधारणा का प्रतिपादन करते हैं। (९-७५)
५. मनुष्य और पशु आदि में जीव (Soul) एक सा है। (९-७४)
६. स्वर्ग, नरक का कोई अलग लोक नहीं है। (९-७६)

विचार करें कि क्या वास्तव में वेद उक्त तथ्यों को प्रतिपादित करते हैं ?

किसी व्यक्ति ने स्वामी जी से सवाल किया कि मनुष्य की सृष्टि प्रथम हुई या पृथ्वी आदि की ? स्वामी जी ने जवाब दिया कि पृथ्वी आदि की, क्योंकि पृथ्वी आदि के बिना मनुष्य की स्थिति और पालन सम्भव नहीं हो सकता (८-५०)। किसी ने स्वामी जी से यह सवाल किया कि जगत् के बनाने में परमेश्वर का क्या प्रयोजन है ? उत्तर दिया गया कि नहीं बनाने में क्या प्रयोजन है ? (८-१६)

एक अन्य प्रश्न-फल, मूल, कंद और रस इत्यादि अदृष्ट में दोष नहीं?

उत्तर - अच्छा (जो अदृष्ट में दोष नहीं) तो भंगी व मुसलमान अपने हाथों से दूसरे स्थान में बनाकर तुम को आकर देवें तो खा लोगे या नहीं? जो कहो कि नहीं तो अदृष्ट में भी दोष है। हाँ! मुसलमानों,

ईसाई आदि मद्य-मांसाहारियों के हाथ के खाने में आर्यों को भी मद्य-मांसादि खाने-पीने का अपराध पीछे लग पड़ता है। (१०-१८)

किसी ने महर्षि से यह सवाल भी किया कि लोग गाय के गोबर से चौका लगाते हैं, अपने गोबर से क्यों नहीं लगाते? महर्षि ने जवाब दिया कि गाय के गोबर में वैसा दुर्गन्ध नहीं होता जैसा मनुष्य के मल में होता है। (१०-३६)।

जैन मतानुयायी ने सवाल किया कि देखो ! तुम लोग बिना उष्ण किए कच्चा पानी पीते हो, वह बड़ा पाप करते हो। जैसे हम उष्ण पानी पीते हैं, वैसे तुम लोग भी पिया करो। उत्तर में कहा गया कि यह बात तुम्हारी भ्रम जाल की है, क्योंकि जब तुम पानी को उष्ण करते हो तब पानी के जीव सब मरते होंगे और उनका शरीर भी जल में रंधकर वह पानी सौंफ के अर्क तुल्य होने से जानों तुम उनके शरीरों का 'तेजाब' पीते हो। इसमें तुम बड़े पापी हो और जो ठण्डा जल पीते हैं वे नहीं। (१२-२००)

एक मुस्लिम मतावलंबी ने कहा कि खुदा सर्वशक्तिमान है, वह जो चाहे कर सकता है। उत्तर में कहा गया कि क्या खुदा दूसरा खुदा भी बना सकता है ? अपने आप मर सकता है? मूर्ख, रोगी और अज्ञानी भी बन सकता है ? (१४-२८)

स्वामी जी ने 'सत्यार्थ प्रकाश' में लिखा है कि एक ब्रह्मचारी के लिए स्त्री दर्शन, स्त्री चर्चा और स्त्री संग सब निषिद्ध है, मगर स्वामी जी ने अपनी पुस्तक में न केवल स्त्री चर्या और सेक्स चर्चा की है, बल्कि एक नव विवाहित जोड़े को गर्भाधान किस प्रकार करना चाहिए ? इस विधि का खुला चित्रण किया है।

विषय वस्तु पर एक नजर डालिए -

.... जब वीर्य का गर्भाशय में गिरने का समय हो उस समय स्त्री और पुरूष दोनों स्थिर और नासिका के सामने नासिका, नेत्र के सामने नेत्र अर्थात् सूधा शरीर और अत्यन्त प्रसन्नचित्त रहें, डिगें नहीं। पुरूष अपने शरीर को ढीला छोड़े और स्त्री वीर्य प्राप्ति-समय अपान वायु को ऊपर खींचे, योनि को ऊपर संकोच कर वीर्य का ऊपर आकर्षण करके गर्भाशय में स्थिर करे। पश्चात् दोनों शुद्ध जल से स्नान करें।

गर्भास्थिति होने का परिज्ञान विदुषी स्त्री को तो उसी समय हो जाता है, परन्तु इसका निश्चय एक मास के पश्चात् रजस्वला न

होने पर सब को हो जाता है।

जब महीने भर में रजस्वला न होने से गर्भस्थिति का निश्चय हो जाए तब से एक वर्ष पर्यन्त स्त्री-पुरूष का समागम कभी न होना चाहिए, क्योंकि ऐसा होने से सन्तान उत्तम और पुनः दूसरा सन्तान भी वैसा ही होता है। अन्यथा वीर्य व्यर्थ जाता, दोनों की आयु घट जाती और अनेक प्रकार के रोग होते हैं, परन्तु ऊपर से भाषणादि प्रेमयुक्त व्यवहार दोनों को अवश्य रखने चाहिए।

.... संतान छह दिन तक माता का दूध पिये और स्त्री भी अपने शरीर के पुष्टि के अर्थ अनेक प्रकार के उत्तम भोजन करे और योनिसंकोचादि भी करे। छठे दिन स्त्री बाहर निकले और सन्तान के दूध पीने के लिए कोई धायी रक्खे। उसको खान-पान अच्छा करावे। वह सन्तान को दूध पिलाया करे और पालन भी करे, परन्तु उसकी माता लड़के पर पूर्ण दृष्टि रक्खे, किसी प्रकार का अनुचित व्यवहार उसके पालन में न हो। स्त्री दूध बन्ध करने के अर्थ स्तन के अग्रभाग पर ऐसा लेप करे कि जिससे दूध स्रवित न हो। उसी प्रकार खान-पान का व्यवहार भी यथायोग्य रक्खे।

(४-६४, ६५, ६८)

उपर्युक्त तथ्यों और विषय वस्तु को पढ़कर अंदाजा लगाया जा सकता है कि क्या इस तरह की बातें एक विद्वान व्यक्ति और बाल ब्रह्मचारी द्वारा लिखी पुस्तक की विषय वस्तु हो सकती है ?

उक्त विषयों के अलावा यह बात भी संदेह उत्पन्न करती है कि स्वामी हिन्दी नहीं जानते थे। उन्होंने खुद 'सत्यार्थ प्रकाश' के द्वितीय संस्करण की भूमिका में लिखा है कि ''जिस समय मैंने यह ग्रंथ 'सत्यार्थ प्रकाश' बनाया था, उस समय और उससे पूर्व संस्कृत भाषण करने, पठन-पाठन में संस्कृत ही बोलने और जन्मभूमि की भाषा गुजराती होने के कारण मुझको इस भाषा का विशेष परिज्ञान नहीं था।'' अतः यह स्पष्ट है कि स्वामी जी को हिन्दी का समुचित ज्ञान नहीं था। जिन दो भाषाओं का समुचित ज्ञान स्वामी जी को था, उनमें गुजराती क्षेत्रीय भाषा थी और संस्कृत आम बोलचाल की भाषा नहीं थी। यहाँ पर यह सवाल पैदा होता है कि स्वामी जी ने 'सत्यार्थ प्रकाश' लिखने से पहले जैन, बौद्ध, ईसाई, इस्लाम आदि धर्मों की पुस्तकों का अध्ययन किया तो वह किस भाषा में किया ? यहाँ यह भी विचारणीय है कि किसी भी नई भाषा को सीखने वाला व्यक्ति

साहित्यिक दृष्टि से संभल कर बोलेगा और लिखेगा। ऐसा कभी नहीं होता कि नई भाषा सीखने वाला व्यक्ति पहले उस भाषा की गाली-गलौच और अशिष्ट शब्द सीखता है। यहाँ यह भी विचारणीय है कि यह कौन सी अक़्लमंदी की बात है कि आदमी उस भाषा में पुस्तक लिखे, जिस भाषा का उसे समुचित ज्ञान न हो। 'सत्यार्थ प्रकाश' को गुजराती अथवा संस्कृत में लिखकर उसका हिन्दी रुपांतरण कराया जा सकता था।

किसी विद्वान और धार्मिक व्यक्ति की भाषा कभी मर्यादाहीन, अहंकारपूर्ण और विद्वेषपूर्ण नहीं होती। 'सत्यार्थ प्रकाश' को पढ़कर ऐसा नहीं लगता कि यह किसी ज्ञानवान और कुलीन व्यक्ति की लेखनी हो। १४वें समुल्लास को पढ़कर तो ऐसा लगता है कि जैसे यह किसी दुराग्रही, दंभी और अल्पज्ञ व्यक्ति की करतूत हो। मुझे तो ऐसा भी प्रतीत होता है कि कुछ स्वार्थी तत्वों द्वारा अंतरिम द्वेष और कुटिल भाव के कारण स्वामी जी की इस कृति के साथ छेड़छाड़ कर एक महान आत्मा के उद्देश्य और प्रतिष्ठा को नुकसान पहुंचाने की कुचेष्टा की गई हो। मेरा यह दावा है कि जिस रूप में 'सत्यार्थ प्रकाश' आज हमारे सम्मुख है, वह किसी प्रकांड पंडित और धर्मज्ञ की रचना नहीं हो सकती। एक कमअक़्ल और गवार व्यक्ति अशिष्ट और दंभपूर्ण भाषा शैली का प्रयोग करे तो बात समझ में आती है, मगर एक आचार्य, संस्कृत का प्रकांड पंडित और वेदों का ज्ञाता अपने मुख्य ग्रंथ में ऐसी भाषा का प्रयोग करे तो इसे क्या कहा जाएगा ? संस्कृत एक अलौकिक, सभ्य और संस्कारित भाषा है, अगर एक संस्कृत और व्याकरण का प्रकांड पंडित अपने महान ग्रंथ में निकृष्ट और अहंकार पूर्ण भाषा का प्रयोग करता है तो क्या यह संस्कृत भाषा का अपमान नहीं हैं ?

नोट : कोष्ठक में प्रस्तुत संदर्भ की पहली संख्या समुल्लास को और दूसरी संख्या समुल्लासों में इंगित प्रश्न, उत्तर या समीक्षा क्रम संख्या को दर्शाती है।

नियोग और नारी

'सत्यार्थ प्रकाश' के चतुर्थ समुल्लास के क्रम सं० १२० से १४६ तक की सामग्री पुनर्विवाह और नियोग विषय से संबंधित है। लिखा है कि द्विजों यानी ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वर्णों में पुनर्विवाह कभी नहीं होने चाहिए। (४-१२१) स्वामी जी ने पुनर्विवाह के कुछ दोष भी गिनाए हैं जैसे - (१) पुनर्विवाह की अनुमति से जब चाहे पुरुष को स्त्री और स्त्री को पुरुष छोड़कर दूसरा विवाह कर सकते हैं। (२) पत्नी की मृत्यु की स्थिति में अगर पुरुष दूसरा विवाह करता है तो पूर्व पत्नी के सामान आदि को लेकर और यदि पति की मृत्यु की स्थिति में स्त्री दूसरा विवाह करती है तो पूर्व पति के सामान आदि को लेकर कुटुम्ब वालों में झगड़ा होगा। (३) यदि स्त्री और पुरुष दूसरा विवाह करते हैं तो उनका पतिव्रत और स्त्रीव्रत धर्म नष्ट हो जाएगा। (४) विधवा स्त्री के साथ कोई कुंवारा पुरुष और विधुर पुरुष के साथ कोई कुंवारी कन्या विवाह न करेगी। अगर कोई ऐसा करता है तो यह अन्याय और अधर्म होगा। ऐसी स्थिति में पुरुष और स्त्री को नियोग की आवश्यकता होगी और यही धर्म है। (४-१३४)

किसी ने स्वामी जी से सवाल किया कि अगर स्त्री अथवा पुरुष में से किसी एक की मृत्यु हो जाती है और उनके कोई संतान भी नहीं है तब अगर पुनर्विवाह न हो तो उनका कुल नष्ट हो जाएगा। पुनर्विवाह न होने की स्थिति में व्यभिचार और गर्भपात आदि बहुत से दुष्ट कर्म होंगे। इसलिए पुनर्विवाह होना अच्छा है। (४-१२२) जवाब दिया गया कि ऐसी स्थिति में स्त्री और पुरुष ब्रह्मचर्य में स्थित रहे और वंश परंपरा के लिए स्वजाति का लड़का गोद ले लें। इससे कुल भी चलेगा और व्यभिचार भी न होगा और अगर ब्रह्मचारी न रह सके तो नियोग से संतानोत्पत्ति कर ले। पुनर्विवाह कभी न करें। आइए अब

देखते हैं कि 'नियोग' क्या है ?

अगर किसी पुरुष की स्त्री मर गई है और उसके कोई संतान नहीं है तो वह पुरुष किसी नियुक्त विधवा स्त्री से यौन संबंध स्थापित कर संतान उत्पन्न कर सकता है। गर्भ स्थिति के निश्चय हो जाने पर नियुक्त स्त्री और पुरुष के संबंध खत्म हो जाएंगे और नियुक्ता स्त्री दो-तीन वर्ष तक लड़के का पालन करके नियुक्त पुरुष को दे देगी। ऐसे एक विधवा स्त्री दो अपने लिए और दो-दो चार अन्य पुरुषों के लिए अर्थात कुल १० पुत्र उत्पन्न कर सकती है। (यहाँ यह स्पष्ट नहीं किया गया है कि यदि कन्या उत्पन्न होती है तो नियोग की क्या शर्तें रहेगी ?) इसी प्रकार एक विधुर दो अपने लिए और दो-दो चार अन्य विधवाओं के लिए पुत्र उत्पन्न कर सकता है। ऐसे मिलकर १०-१० संतानोत्पत्ति की आज्ञा वेद में है।

इमां त्वमिन्द्र मीढ्वः सुपुत्रां सुभगां कृणु।
दशास्यां पुत्राना धेहि पतिमेकादशं कृधि।
(ऋग्वेद १०-८५-४५)

भावार्थ : "हे वीर्य सेचन हार शक्तिशाली वर! तू इस विवाहित स्त्री या विधवा स्त्रियों को श्रेष्ठ पुत्र और सौभाग्य युक्त कर। इस विवाहित स्त्री से दस पुत्र उत्पन्न कर और ग्यारहवीं स्त्री को मान। हे स्त्री! तू भी विवाहित पुरुष या नियुक्त पुरुषों से दस संतान उत्पन्न कर और ग्यारहवें पति को समझ।" (४-१२५)

वेद की आज्ञा है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वर्णस्थ स्त्री और पुरुष दस से अधिक संतान उत्पन्न न करें, क्योंकि अधिक करने से संतान निर्बल, निर्बुद्धि और अल्पायु होती है। जैसा कि उक्त मंत्र से स्पष्ट है कि नियोग की व्यवस्था केवल विधवा और विधुर स्त्री और पुरुषों के लिए नहीं है बल्कि पति के जीते जी पत्नी और पत्नी के जीते जी पुरुष इसका भरपूर लाभ उठा सकते हैं। (४-१४३)

आ घा ता गच्छानुत्तरा युगानि यत्र जामयः कृराावन्नजामि।
उप बर्बृहि वृषभाय बाहुमन्यमिच्छस्व सुभगे पति मत्।
(ऋग्वेद १०-१०-१०)

भावार्थ : "नपुंसक पति कहता है कि हे देवि! तू मुझ से संतानोत्पत्ति की आशा मत कर। हे सौभाग्यशालिनी! तू किसी वीर्यवान पुरुष के बाहु का सहारा ले। तू मुझ को छोड़कर अन्य पति की इच्छा कर।"

इसी प्रकार संतानोत्पत्ति में असमर्थ स्त्री भी अपने पति

महाशय को आज्ञा दे कि हे स्वामी! आप संतानोत्पत्ति की इच्छा मुझ से छोड़कर किसी दूसरी विधवा स्त्री से नियोग करके संतानोत्पत्ति कीजिए।

अगर किसी स्त्री का पति व्यापार आदि के लिए परदेश गया हो तो तीन वर्ष, विद्या के लिए गया हो तो छह वर्ष और अगर धर्म के लिए गया हो तो आठ वर्ष इंतज़ार कर वह स्त्री भी नियोग द्वारा संतान उत्पन्न कर सकती है। ऐसे ही कुछ नियम पुरुषों के लिए हैं कि अगर संतान न हो तो आठवें, संतान होकर मर जाए तो दसवें और कन्या ही हो तो ग्यारहवें वर्ष अन्य स्त्री से नियोग द्वारा संतान उत्पन्न कर सकता है। पुरुष अप्रिय बोलने वाली पत्नी को छोड़कर दूसरी स्त्री से नियोग का लाभ ले सकता है। ऐसा ही नियम स्त्री के लिए है। (४-१४५)

प्रश्न सं० १४६ में लिखा है कि अगर स्त्री गर्भवती हो और पुरुष से न रहा जाए और पुरुष दीर्घरोगी हो और स्त्री से न रहा जाए तो ऐसी स्थिति में दोनों किसी से नियोग कर पुत्रोत्पत्ति कर लें, परन्तु वेश्यागमन अथवा व्यभिचार कभी न करें। (४-१४६) लिखा है कि नियोग अपने वर्ण में अथवा उत्तम वर्ण और जाति में होना चाहिए। एक स्त्री १० पुरुषों तक और एक पुरुष १० स्त्रियों तक से नियोग कर सकता है। अगर कोई स्त्री अथवा पुरुष १०वें गर्भ से अधिक समागम करे तो कामी और निंदित होते हैं। (४-१४२) विवाहित पुरुष कुंवारी कन्या से और विवाहित स्त्री कुंवारे पुरुष से नियोग नहीं कर सकती।

पुनर्विवाह और नियोग से संबंधित कुछ नियम, कानून, शर्तें और सिद्धांत आपने पढ़े जिनका प्रतिपादन स्वामी दयानंद ने किया है और जिनको कथित लेखक ने वेद, मनुस्मृति आदि ग्रंथों से सत्य, प्रमाणित और न्यायोचित भी साबित किया है। व्यावहारिक पुष्टि हेतु कुछ ऐतिहासिक प्रमाण भी कथित लेखक ने प्रस्तुत किए हैं और साथ-साथ नियोग की खूबियां भी बयान की हैं। इस कुप्रथा को धर्मानुकूल और न्यायोचित साबित करने के लिए लेखक ने बौद्धिकता और तार्किकता का भी सहारा लिया है। कथित सुधारक ने आज के वातावरण में भी पुनर्विवाह को दोषपूर्ण और नियोग को तर्कसंगत और उचित ठहराया है। आइए उक्त धारणा का तथ्यपरक विश्लेषण करते हैं।

ऊपर (४-१३४) में पुनर्विवाह के जो दोष स्वामी दयानंद ने गिनवाए हैं वे सभी हास्यास्पद, बचकाने और मूर्खतापूर्ण हैं। विद्वान लेखक ने जैसा लिखा है कि दूसरा विवाह करने से स्त्री का पतिव्रत

धर्म और पुरुष का स्त्रीव्रत धर्म नष्ट हो जाता है परंतु नियोग करने से दोनों का उक्त धर्म शुद्ध और सुरक्षित रहता है। क्या यह तर्क मूर्खतापूर्ण नहीं है ? आख़िर वह कैसा पतिव्रत धर्म है जो पुनर्विवाह करने से तो नष्ट और भ्रष्ट हो जाएगा और १० गैर पुरुषों से यौन संबंध बनाने से सुरक्षित और निर्दोष रहेगा ?

अगर किसी पुरुष की पत्नी जीवित है और किसी कारण पुरुष संतान उत्पन्न करने में असमर्थ है तो इसका मतलब यह तो हरगिज़ नहीं है कि उस पुरुष में काम इच्छा (Sexual desire) नहीं है। अगर पुरुष के अन्दर काम इच्छा तो है मगर संतान उत्पन्न नहीं हो रही है और उसकी पत्नी संतान के लिए किसी अन्य पुरुष से नियोग करती है तो ऐसी स्थिति में पुरुष अपनी काम तृप्ति कहाँ और कैसे करेगा? यहाँ यह भी विचारणीय है कि नियोग प्रथा में हर जगह पुत्रोत्पत्ति की बात कही गई है, जबकि जीव विज्ञान के अनुसार ५० प्रतिशत संभावना कन्या जन्म की होती है। कन्या उत्पन्न होने की स्थिति में नियोग के क्या नियम, कानून और शर्ते होंगी, यह स्पष्ट नहीं किया गया है?

जैसा कि स्वामी जी ने कहा है कि अगर किसी स्त्री के बार-बार कन्या ही उत्पन्न हो तो भी पुरुष नियोग द्वारा पुत्र उत्पन्न कर सकता है। यहाँ यह तथ्य विचारणीय है कि अगर किसी स्त्री के बार-बार कन्या ही उत्पन्न हो तो इसके लिए स्त्री नहीं, पुरुष जिम्मेदार है। यह एक वैज्ञानिक तथ्य है कि मानव जाति में लिंग का निर्धारण नर द्वारा होता है न कि मादा द्वारा।

यह भी एक तथ्य है कि पुनर्विवाह के दोष और हानियाँ तथा नियोग के गुण और लाभ का उल्लेख केवल द्विज वर्णों, ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के लिए किया गया है। चौथे वर्ण शूद्र को छोड़ दिया गया है। क्या शूद्रों के लिए नियोग की अनुमति नहीं है? क्या शूद्रों के लिए नियोग की व्यवस्था दोषपूर्ण और पाप है ?

जैसा कि लिखा है कि अगर पत्नी अथवा पति अप्रिय बोले तो भी वे नियोग कर सकते हैं। अगर किसी पुरुष की पत्नी गर्भवती हो और पुरुष से न रहा जाए अथवा पति दीर्घरोगी हो और स्त्री से न रहा जाए तो दोनों कहीं उचित साथी देखकर नियोग कर सकते हैं। क्या यहाँ सारे नियमों और नैतिक मान्यताओं को लॉकअप में बन्द नहीं कर दिया गया है ? क्या उक्त से यह साबित नही हो रहा है कि

नियोग का मतलब स्वच्छंद यौन संबंधों (Sex Free) से है। क्या इससे निम्न और घटिया किसी समाज की कल्पना की जा सकती है?

कथित विद्वान लेखक ने नियोग प्रथा की सत्यता, प्रमाणिकता और व्यावहारिकता की पुष्टि के लिए महाभारत कालीन सभ्यता के दो उदाहरण प्रस्तुत किए हैं। लिखा है कि व्यास जी ने चित्रांगद और विचित्र वीर्य के मर जाने के बाद उनकी स्त्रियों से नियोग द्वारा संतान उत्पन्न की। अम्बिका से धृतराष्ट्र, अम्बालिका से पाण्डु और एक दासी से विदुर की उत्पत्ति नियोग प्रक्रिया द्वारा हुई। दूसरा उदाहरण पाण्डु राजा की स्त्री कुंती और माद्री का है। पाण्डु के असमर्थ होने के कारण दोनों स्त्रियों ने नियोग विधि से संतान उत्पन्न की। इतिहास भी इस बात का प्रमाण है।

जहाँ तक उक्त ऐतिहासिक तथ्यों की बात है महाभारत कालीन सभ्यता में नियोग की तो क्या बात कुंवारी कन्या से संतान उत्पन्न करना भी मान्य और सम्मानीय था। वेद व्यास और भीष्म पितामह दोनों विद्वान महापुरुषों की उत्पत्ति इस बात का ठोस सबूत है। दूसरी बात महाभारत कालीन समाज में एक स्त्री पांच सगे भाइयों की धर्मपत्नी हो सकती थी। पांडव पत्नी द्रौपदी इस बात का ठोस सबूत है। तीसरी बात महाभारत कालीन समाज में तो बिना स्त्री संसर्ग के केवल पुरुष ही बच्चें पैदा करने में समर्थ होता था। महाभारत का मुख्य पात्र गुरु द्रोणाचार्य की उत्पत्ति उक्त बात का सबूत है। चौथी बात महाभारतकाल में तो चमत्कारिक तरीके से भी बच्चें पैदा होते थे। पांचाली द्रौपदी की उत्पत्ति इस बात का जीता-जागता सबूत है। अतः उक्त समाज में नियोग की क्या आवश्यकता थी ? यहाँ यह भी विचारणीय है कि व्यास जी ने किस नियमों के अंतर्गत नियोग किया ? मुनि व्यास विधुर तो नही थे। दूसरी बात नियोग किया तो एक ही समय में तीन स्त्रियों से क्यों किया? तीसरी बात यह कि एक मुनि ने निम्न वर्ण की दासी के साथ क्यों समागम किया ? चौथी बात यह कि कुंती ने नियम के विपरीत नियोग विधि से चार पुत्रों को जन्म क्यों दिया ? नियमानुसार अपने लिए केवल दो पुत्रों को जन्म देना चाहिए था। विदित रहे कि कुंती ने कर्ण, युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन चार पुत्रों को जन्म दिया और ये सभी पाण्डु कहलाए। पांचवी बात यह कि जब उस समाज में नियोग प्रथा निर्दोष और मान्य थी तो फिर कुंती ने लोक लाज के डर से कर्ण को नदी में क्यों बहा दिया ? छठी

बात यह है कि वे पुरुष कौन थे जिन्होंने कुंती से नियोग द्वारा संतान उत्पन्न की ? स्वामी जी ने बहुविवाह का निषेध किया है जबकि उक्त सभ्यता में बहुविवाह होते थे। अब क्या जिस समाज से स्वामी जी ने नियोग के प्रमाण दिए हैं, उस समाज को एक उच्च और आदर्श वैदिक समाज माना जाए ?

'सत्यार्थ प्रकाश' के शंका-समाधान परिशिष्ट में पं० ज्वालाप्रसाद शर्मा द्वारा नियोग प्रथा के समर्थन में अनेक प्रमाण प्रस्तुत किए हैं। लिखा है कि प्राचीन वैदिक काल में कुलनाश के भय से ऋषि-मुनि, विद्वान, महापुरुषों से नियोग द्वारा वीर्य ग्रहण कर उच्च कुल की स्त्रियां संतान उत्पन्न करती थी। जो प्रमाण पंडित जी ने प्रस्तुत किए हैं वे सभी महाभारत काल के हैं। क्या महाभारत काल ही प्राचीन वैदिक काल था ? क्या नियोग ही ऋषियों का एक मात्र प्रयोजन था?

यहाँ यह तथ्य भी विचारणीय है कि अगर स्वामी दयानंद सरस्वती नियोग को एक वेद प्रतिपादित और स्थापित व्यवस्था मानते थे तो उन्होंने इस परंपरा का खुद पालन करके अपने अनुयायियों के लिए आदर्श प्रस्तुत क्यों नहीं किया ? इससे स्वामी जी के चरित्र को भी बल मिलता और एक मृत प्रायः हो चुकी वैदिक परंपरा पुनः जीवित हो जाती।

यह भी एक अजीब विडंबना है कि जिस वैदिक मंत्र से स्वामी जी ने नियोग परंपरा को प्रतिपादित किया है उसी मंत्र से अन्य वेद विद्वानों और भाष्यकारों ने विधवा पुनर्विवाह का प्रतिपादन किया है। निम्न मंत्र देखिए -

''कुह स्विद्दोषा कुह वस्तोरश्विना कुहाभिपित्वं करतः कुहोषतुः।
को वां शत्रुया विधवेव देवरं मर्य न योषा कृणुते सधस्य आ।।''
(ऋग्वेद, १०-४०-२)

''उदीर्ष्व नार्यभिजीवलोकं गतासुमेतमुप शेष एहि।
हस्तग्राभस्य दिधिशोस्तवेदं पत्युर्जनित्वमभि सं बभूथ।।''
(ऋग्वेद, १०-१८-८)

उक्त दोनों मंत्रों से जहाँ स्वामी दयानंद सरस्वती ने नियोग प्रथा का भावार्थ निकाला है वहीं ओमप्रकाश पाण्डेय ने इन्हीं मंत्रों का उल्लेख विधवा पुनर्विवाह के समर्थन में किया है। अपनी पुस्तक ''वैदिक साहित्य और संस्कृति का स्वरूप'' में उन्होंने लिखा है कि वेदकालीन समाज में विधवा स्त्रियों को पुनर्विवाह की अनुमति प्राप्त

थी। उक्त मंत्र (१०-१८-८) का भावार्थ उन्होंने निम्न प्रकार किया हैः

''हे नारी ! इस मृत पति को छोड़कर पुनः जीवितों के समूह में पदार्पण करो। तुमसे विवाह के लिए इच्छुक जो तुम्हारा दूसरा भावी पति है, उसे स्वीकार करो।''

इसी मंत्र का भावार्थ वैद्यनाथ शास्त्री द्वारा निम्न प्रकार किया गया है :

''जब कोई स्त्री जो संतान आदि करने में समर्थ है, विधवा हो जाती है तब वह नियुक्त पति के साथ संतान उत्पत्ति के लिए नियोग कर सकती है।''

उक्त मंत्रों में स्वामी दयानंद ने देवर शब्द का अर्थ जहाँ 'द्वितीय नियुक्त पति' लिया है वहीं पाण्डेय जी ने देवर शब्द का अर्थ 'द्वितीय विवाहित पति' लिया है। निरुक्त के संदर्भ में पाण्डेय जी ने लिखा है कि यास्क ने अपने निरूक्त में देवर शब्द का निर्वचन 'द्वितीय वर' के रूप में ही किया है। उक्त मंत्रों के साथ पाण्डेय जी ने अथर्ववेद का भी एक मंत्र विधवा पुनर्विवाह के समर्थन में प्रस्तुत किया है। जो निम्न है -

''या पूर्वं पतिं वित्त्वाथान्यं विन्दते परम्।
पञ्चौदनं च तावजं ददातो न वि योषतः।।
समानलोको भवति पुनर्भुवापरः पतिः।
योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति।।''
(अथर्वसंहिता ९-५-२७,२८)

उक्त से स्पष्ट है कि वेद भाष्यों में इतना अधिक अर्थ भेद और मतभेद पाया जाता है कि सत्य और विश्वसनीय धारणाओं का निर्णय करना अत्यंत मुश्किल काम है? यहाँ यह भी विचारणीय है कि विवाह का उद्देश्य केवल संतानोत्पत्ति करना ही नहीं होता बल्कि स्वच्छंद यौन संबंध को रोकना और भावों को संयमित करना भी है। यहाँ यह भी विचारणीय है कि जो विषय (नारी और सेक्स) एक बाल ब्रह्मचारी के लिए क़तई निषिद्ध था, स्वामी जी ने उसे भी अपनी चर्चा और लेखनी का विषय बनाया है।

बेहद अफसोस और दुःख का विषय है कि जहाँ एक विद्वान और समाज सुधारक को पुनर्विवाह और विधवा विवाह का समर्थन करना चाहिए था, वहाँ कथित समाज सुधारक द्वारा नियोग प्रथा की वकालत की गई है और इसे वर्तमान काल के लिए भी उपयुक्त बताया

है। क्या यह एक विद्वान की घटिया मनोवृत्ति का प्रतीक नहीं है ? आज की फिल्में जो कतई निम्न स्तर का प्रदर्शन करती हैं, उनमें भी कहीं इस प्रथा का प्रदर्शन और समर्थन देखने को नहीं मिलता। स्वामी दयानंद को छोड़कर नवजागरण के सभी विद्वानों और सुधारकों द्वारा विधवा पुनर्विवाह का समर्थन किया गया है।

जब किसी क़ौम या समाज के धार्मिक लोग जघन्य नैतिक बुराइयों और बिगाड़ में गर्क हो जाते हैं, तो वह क़ौम नैतिक पतन की पराकाष्ठा को पहुंच जाती है। नैतिक बुराइयों में निमग्न होने के बावजूद कथित धार्मिक लोग अपने बचाव और समाज में अपना स्तर और आदर-सम्मान बनाए रखने के लिए और साथ-साथ अपने को सही और सदाचारी साबित करने के लिए उपाय तलाशते हैं। अपने बचाव के लिए कथित मक्कार लोग अपनी धार्मिक पुस्तकों से छेड़छाड़ करते हैं और उनमें फेरबदल कर उस नैतिक बुराई को जो उनमें है, अपने देवताओं, अवतारों, ऋषियों, मुनियों और आदर्शों से जोड़ देते हैं और जनसाधारण को यह समझाकर अपने बचाव का रास्ता निकाल लेते हैं कि यह बुराई नहीं है बल्कि धर्मानुकूल है। ऐसा तो हमारे ऋषि-मुनियों और महापुरुषों ने भी किया है। नियोग के विषय में भी मुझे ऐसा ही प्रतीत होता है। जब क़ौम में स्वच्छंद यौन संबंधों की अधिकता हो गई और जो बुराई थी, वह सामाजिक रस्म और रिवाज़ बन गई तो मक्कार लोगों ने उस बुराई को अच्छाई बनाकर अपने धार्मिक ग्रंथों में प्रक्षेपित कर दिया। प्राचीन काल में धार्मिक ग्रंथों में परिवर्तन करना आसान था, क्योंकि धार्मिक ग्रंथों पर चन्द लोगों का अधिकार होता था। नियोग एक गर्हित और गंदी परंपरा है, इसे किसी भी काल के लिए उचित नहीं कहा जा सकता।

भारतीय चिंतन में नारी की स्थिति अत्यंत दयनीय प्रतीत होती है। ऐसा प्रतीत होता है कि ऋषि, मुनियों और महापुरुषों द्वारा कुछ ऐसे नियम-कानून बनाए गए, जिन्होंने नारी को भोग की वस्तु और नाश्ते की प्लेट बना दिया। नियोग प्रथा ने विधवा स्त्री को कतई वेश्या ही बना दिया। जैसा कि आप ऊपर पढ़ चुके हैं कि एक विधवा १० पुरुषों से नियोग कर सकती है। यहाँ विधवा और वेश्या शब्दों को एक अर्थ में ले लिया जाए तो शायद अनुचित न होगा। विधवाओं की दुर्दशा को चित्रित करने वाली एक फिल्म 'वाटर' सन् २००० ई० में विवादों के कारण प्रतिबंधित कर दी गई थी, जिसमें ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर विधवाओं को वेश्याओं के रूप में दिखाया

गया था। प्रायः विधवा स्त्रियाँ काशी, वृन्दावन आदि तीर्थस्थानों में आकर मंदिरों में भजन-कीर्तन करके और भीख मांगकर अपनी गुजर बसर करती थी, क्योंकि समाज में उनको अशुभ और अनिष्ट सूचक समझा जाता था। 'सत्यार्थ प्रकाश' में स्वामी जी ने भी इस दशा का वर्णन करते हुए लिखा है- ''वृंदावन जब था तब था अब तो वेश्यावनवत्, लल्ला-लल्ली और गुरु-चेली आदि की लीला फैल रही है। (११-१५६), आज भी काशी में लगभग १६००० विधवाएं रहती हैं।

'मनुस्मृति' में विवाह के आठ प्रकार बताए गए हैं। (३-२१) इनमें आर्ष, आसुर और गान्धर्व विवाह को निकृष्ट बताया गया है मगर ऋषियों, मुनियों, तपस्वियों और मर्मज्ञों ने इनका भरपूर फायदा उठाया। ब्रह्मर्षि विश्वामित्र, मुनि पराशर, कौरवों-पांडवों के पूर्वज शान्तनु, पाण्डु पुत्र अर्जुन और भीम आदि ने उक्त प्रकार के विवाहों की आड़ में नारी के साथ क्या किया ? इसका वर्णन भारतीय ग्रंथों में मिलता है।

भारतीय ग्रंथों में नारी को किस रूप में दर्शाया गया है आइए अति संक्षेप में इस पर भी एक दृष्टि डाल लेते हैं।

१. ''ढिठाई, अति ढिठाई और कटुवचन कहना, ये स्त्री के रूप हैं। जो जानकार हैं वह इन्हें शुद्ध करता है।'' (ऋग्वेद, १०-८५-३६)

२. ''सर्वगुण सम्पन्न नारी अधम पुरुष से हीन है।''
(तैत्तिरीय संहिता, ६-५-८-२)

३. नारी जन्म से अपवित्र, पापी और मूर्ख है।'' (रामचरितमानस)

उक्त तथ्यों के आधार पर भारतीय चिंतन में नारी की स्थिति और दशा का आकलन हम भली-भांति कर सकते हैं। भारतीय ग्रंथों में नारी की स्थिति दमन, दासता और भोग की वस्तु से अधिक दिखाई नहीं पड़ती। यहाँ यह भी विचारणीय है कि क्या आधुनिक भारतीय नारी चिंतकों की सोच अपने ग्रंथों से हटकर हो सकती है ? आइए भारतीय संस्कृति में नारी की दशा का आकलन करने के लिए छांदोग्य उपनिषद् के एक मुख्य प्रसंग पर भी दृष्टि डाल लेते हैं।

नाहमेतद्वेद तात यद्गोत्रस्त्वमसि, बह्वहं चरन्ती
परिचारिणी यौवने त्वामलमे साहमेतन्न वेद यद्
गोत्रत्वमसि, जाबाला तु नामाहमस्मि सत्यकामो नाम
त्वमसि स सत्यकाम एव जाबालो ब्रुवीथा इति।
(छांदोग्य उपनिषद् ४-४-२)

यह प्रसंग सत्यकाम का है। जिसकी माता का नाम जबाला था। सत्यकाम गौतम ऋषि के यहाँ विद्या सीखना चाहता था। जब वह घर से जाने लगा, तब उसने अपनी माँ से पूछा ''माता मैं किस गोत्र का हूँ ?'' उसकी माँ ने उससे कहा, ''बेटा मैं नहीं जानती तू किस गोत्र का है। अपनी युवावस्था में, जब मैं अपने पिता के घर आए हुए बहुत से अतिथियों की सेवा में रहती थी, उस समय तू मेरे गर्भ में आया था। मैं नहीं जानती तेरा गोत्र क्या है ? मेरा नाम जबाला है, तू सत्यकाम है, अपने को सत्यकाम जबाला बताना।''

क्या उपरोक्त उद्धरणों से तथ्यात्मक रूप से यह बात साबित नहीं होती कि भारतीय चिंतन में नारी को न केवल निम्न और भोग की वस्तु बल्कि नाश्ते की प्लेट समझा गया है ?

जीव हत्या और मांसाहार

'सत्यार्थ प्रकाश' में स्वामी जी ने न केवल मांसाहार का निषेध किया है बल्कि यह भी कहा है कि मांसाहारी मनुष्यों का संग करने व उनके हाथ का खाने से आर्यों को भी मांस खाने का पाप लगता है। यह भी लिखा है कि पशुओं को मारने वालों को सब मनुष्यों की हत्या करने वाला जानिए। (१०-२५)

एक आर्य समाज के विद्वान से कुछ खास विषयों पर चर्चा हुई। उन्होंने कहा कि मैं तुम्हारी अन्य सारी बातें मानने को तैयार हूँ मगर जीव हत्या कर मांस खाने को मैं धर्मशास्त्र व मानव प्रकृति के अनुकूल नहीं मानता। निरीह, मूक पशु-पक्षियों को काट कर खाना न केवल निंदित व निषिद्ध है, बल्कि जघन्य अपराध भी है।

उन्होंने यहां तक भी कहा कि जो क़ौमे पशुओं को ज़िब्ह करती हैं, वो कट्टर, बेदर्द और बेरहम हो जाती हैं और उन क़ौमों को फिर मनुष्यों को मारने व काटने में कोई दया व हिचक महसूस नहीं होती। मैंने उनसे पूछा कि जो लोग भ्रूण हत्या कर रहे हैं, अपनी ही निरीह, मूक व निपराध संतान की पेट में ही टुकड़े-टुकड़े कराकर निर्दयता के साथ हत्या करा रहे हैं क्या उनकी यह कट्टरता पशुओं को ज़िब्ह करने व मांस खाने का परिणाम हैं ? क्या इससे अधिक कट्टरता व बेरहमी कोई और हो सकती है ? क्या यह मनुष्य की बेदर्दी की पराकाष्ठा नहीं है ?

मैंने उनसे पूछा कि आप बताइए शेर मांस क्यों खाता है ? उन्होंने कहा कि जानवरों में बुद्धि नहीं होती, उनको अच्छे-बुरे का ज्ञान नहीं होता। अगर मनुष्य भी ऐसा ही करता है तो फिर उसमें व जानवरों में अंतर ही क्या रहा ? मैंने उनसे कहा कि हाथी मांस नहीं खाता तो क्या वह बुद्धिमान होता है ? उन्होंने दोबारा अपनी बात

बड़ी करते हुए कहा कि मांस तामसी भोजन है, इसको खाने से बुद्धि भी तामसी हो जाती है, ''जैसा खाये अन्न वैसा हो जाए मन'' मांस मानव बुद्धि व शरीर दोनों के लिए हानिकारक है।

मैंने उनसे कहा कि वैज्ञानिकों का बौद्धिक स्तर सबसे ऊंचा होता है, शायद ही विश्व में कोई वैज्ञानिक ऐसा हो जो मांस न खाता हो। क्या उनकी बुद्धि को तामसी कहा जा सकता है ? बाद में उन्होंने इस विषय को पूर्वकृत कर्मों के परिणामों से जोड़कर चर्चा समाप्त कर दी। एक अन्य आर्य समाज के विद्वान ने ''आतंकवाद, समस्या व समाधान'' विषय पर बोलते हुए कहा कि आतंकवाद का प्रमुख कारण मांसाहार है। तामसी भोजन खाने से बुद्धि तामसी हो जाती है फिर मनुष्य को आतंक ही सूझता है। अगर विश्व में मांसाहार पर पाबंदी लगा दी जाए तो आतंकवाद की समस्या का समाधान हो सकता है। उनका इशारा तो एक विशेष क़ौम की तरफ़ था, मगर मांस तो विश्व की सभी क़ौमे खाती हैं।

वनस्पति वैज्ञानिक अनेक शोधों द्वारा इस अंतिम निष्कर्ष पर पहुंच गए हैं कि पेड़-पौधों में भी जीवन होता है। स्वामी दयानंद सरस्वती ने 'सत्यार्थ प्रकाश' में लिखा है कि मनुष्य, पशु व पेड़-पौधों आदि में जीव एक जैसा है जो कर्मानुसार एक योनि से दूसरी योनि में आता जाता रहता है। (९-७५) इसलिए न तो केवल पशु-पक्षियों आदि को खाना महा पाप हुआ बल्कि पेड़-पौधों को खाना भी जघन्य अपराध हुआ।

पशु-पक्षियों को अगर ज़िब्ह किया जाए तो वे अपना विरोध प्रकट कर सकते हैं, मगर पैड़-पौधों से अधिक लाचार व बेबस और कौन होगा जो अपना विरोध तक प्रकट नहीं कर सकते ? उनको काटना व खाना तो और भी अधिक पाप होगा। तो क्या शाक सब्जियों व फलों आदि को भी नहीं खाना चाहिए। अब अगर हम विज्ञान के सत्य को झुठला भी दें कि पेड़-पौधों में जीवन नहीं है तो क्या हम यह भी झुठला सकते हैं कि जिन शाक-सब्जियों व फलों को हम खाते हैं उनको उत्पन्न करने में कितनी बड़ी संख्या में जीवों की हत्या होती है ?

एक आम के पेड़ पर लगने वाला कड़ी कीड़ा लाखों-करोड़ों की तादाद में होता है। ईख व ज्वार की फ़सल पर लगने वाला पाइरिल्ला एक हेक्टेयर खेत में अरबों-खरबों की तादाद में होता है।

चने आदि की फ़सल को लगने वाली सूंडियां व गिंडारें कुछ ही दिनों में पूरी फ़सल नष्ट कर देती हैं। असंख्य जीवों की हत्या कर किसान गोभी, बैगन, शाक-सब्ज़ी उत्पन्न करता है। अनेक बीमारियों से बचने के लिए हम कीटनाशक दवाएं प्रयोग करते हैं। घरों में महिलाएं मक्खी, मच्छर, जूं व रसोई घर में रखे दाल, चावल, गेहूं आदि में पैदा होने वाले कीड़ों को मारने में कोई झिझक अथवा ग्लानि महसूस नहीं करती। क्या इन सब जीवों को मारना जीव हत्या के दायरे में नहीं आता ? क्या इन सबसे बचा जा सकता है ? क्या भैंस, गाय, बकरी आदि को मारने ही को जीव हत्या कहते हैं?

यह भी विचारणीय है कि हिंदू संगठन केवल गो-हत्या का विरोध करते हैं, जबकि ऊंट, भैंस, बकरा, मछली आदि भी गाय जैसे ही जीव हैं। यह भी विचारणीय है कि एक तरफ़ तो जीव को आदि अमर व अजर बतलाते हैं दूसरी तरफ जीव हत्या की बात करते हैं। यह भी विचारणीय है कि एक तरफ़ तो कर्मानुसार फल भोग की बात करते हैं दूसरी तरफ जीव हत्या को पाप व जघन्य अपराध की संज्ञा देते हैं। अफ़सोस इस बात का है कि धर्मशास्त्र व विज्ञान दोनों की अनुमति के बावजूद भी इस विषय को विवाद का विषय बनाया गया व बनाया जा रहा है और कुछ मांस खाने वाले हिंदू भाई भी रुग्ण मानसिकता का शिकार होकर मांसाहार का विरोध कर रहे हैं।

हमारे एक साथी जो मांसाहार का पुरजोर विरोध करते हैं, बारह ज्योति-लिंगों के दर्शन हेतु भारत भ्रमण पर निकले। वापसी होने पर यात्रा के सभी पहलुओं पर विस्तार से चर्चा हुई। चर्चा के दौरान उन्होंने बताया कि दक्षिण भारत के लोग उत्तरी भारत की अपेक्षा अधिक धार्मिक प्रवृत्ति के हैं। मैंने उनसे पूछा कि दक्षिण भारत के लोग मांसाहारी होते हैं और आपके अनुसार मांस खाना पाप व अधार्मिक कृत्य है तो फिर वे लोग धार्मिक कहाँ, पापी हैं। उन्होंने अपनी बात बड़ी करते हुए कहा कि दक्षिणी भारत की भौगोलिक परिस्थितियां ही कुछ ऐसी हैं कि वहां मांस खाने को पाप नहीं कहा जा सकता। ये विचार किसी आम व्यक्ति के नहीं बल्कि वर्ग विशेष में अपनी एक खास पहचान रखने वाले व्यक्ति के हैं।

अनेक बीमारियों की दवाएं ऐसी हैं जिनको अनेक पशु-पक्षियों के अंशों से बनाया जाता है। कुछ खास बीमारियां जैसे - सांस, क्षयरोग आदि में चिकित्सक बकरा, मछली व पक्षियों आदि का मांस

खाने की सलाह देते हैं। किसानों की अत्याधिक मांग पर उत्तर प्रदेश सरकार ने नील गाय को नील घोड़ा नाम देकर मारने के शासनादेश जारी किए हैं, ताकि वे किसानों की खड़ी व पकी फ़सल को बरबाद न करें। चूहों से फसल को बचाने के लिए सरकार गीदड़ों की व्यवस्था करती है। भारत के कई राज्यों जैसे तमिलनाडु, पश्चिमी बंगाल व उत्तराखण्ड आदि में गैर-मुस्लिम समाज में बलि की प्रथा प्रचलित है जो बड़ी निर्दयता व निर्भयता से की जाती है। नेपाल में वीरगंज के समीप गढ़ी माई मंदिर में हर वर्ष करीब २००००० (दो लाख) पशुओं की बलि दी जाती है। नाहन (सिरमौर) गिरिपार में माघी के दिन हर वर्ष हजारों बकरों की बलि दी जाती है। झारखण्ड के पूर्व मुख्यमंत्री मधुकोडा की पत्नी गीता कोडा ने रांची के रजप्पा मंदिर में ११ बकरों की बलि दी। (अमर उजाला, ७.११.२००६)।

यह भी विचारणीय है कि जो पशु-पक्षी खाने में इस्तेमाल किए जाते हैं उनकी संख्या में कोई कमी नहीं देखी जा रही है। संख्या के एतबार से देखा जाए तो मछली विश्व में सबसे अधिक खाई जाती है मगर मछली का उत्पादन बढ़ता ही जा रहा है। कुछ जीव जैसे शेर, हाथी आदि खाने में इस्तेमाल नहीं होते, उनकी संख्या दिन-प्रतिदिन घटती जा रही है। यह भी विचारणीय है कि विश्व में बहुत से देश ऐसे हैं जो केवल पूरी तरह मांसाहार पर ही निर्भर हैं। ग्रीन लैंड और उत्तरी अमेरिका में समुद्र तटों पर बसने वाली जाति स्कीमों की रोटी, कपड़ा और मकान आदि मानव जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति समुद्री जीवों द्वारा ही होती है। उनका जीवन पूर्णतः मांस पर ही निर्भर है।

यह भी विचारणीय है कि नन्हीं-सी चींटीं व मकड़ी मांसाहारी होती है, जबकि विशालकाय हाथी व ऊँट मांसाहारी नहीं होते। बहुत से मध्यम ऊँचाई के पेड़-पौधे मांसाहारी होते हैं, जबकि विशालकाय वट व पीपल वृक्ष मांसाहारी नहीं होते। बगुले को केला व सेब और छिपकली को हम दाल व चावल खाना नहीं खिला सकते। अगर हमें विश्वास है कि कोई सृष्टिकर्ता है तो यह उसी की व्यवस्था है। पृथ्वी पर कोई भी जीव अथवा पौधा मनुष्य जाति का मोहताज नहीं है। पीपल, तुलसी, चींटी, बंदर व गाय आदि मनुष्य की वजह से जीवित नहीं हैं, मगर मनुष्य इन सबके बिना जीवित नहीं रह सकता। सभी जीव-जन्तु व पेड़-पौधे मनुष्य जाति की आवश्यकता है। वास्तविकता

भी यह है कि सृष्टिकर्ता ने इन सबको पैदा ही मनुष्य जाति के उपयोग के लिए किया है।

स्वामी जी ने मांसाहारी मनुष्यों को इतना अधिक मलेच्छ, अछूत, घृणित व पापी माना है कि उनके संग करने मात्र से आर्यों को भी मांस खाने का पाप लगने की संभावना व शंका व्यक्त की है, तो क्या मांसाहारी मनुष्यों का संग करने से बचा जा सकता है ? दूसरी बात बिना जीव हत्या के गेहूं, शाक-सब्जी व फल आदि को पैदा नहीं किया जा सकता, अगर हम कीटनाशक दवाओं का इस्तेमाल न भी करें फिर भी खेत जोतने-खोदने में ही असंख्य जीवों की हत्या होती है, तो क्या बिना गेहूं, शाक-सब्जी व फल आदि खाये बिना मनुष्य जिन्दा रह सकता है? क्या ये आदर्श व सिद्धांत तार्किक व व्यावहारिक हैं?

स्वामी जी ने मनुष्य, पशु व पेड़-पौधों में जीव एक जैसा बताया है, फिर तो स्वामी जी के मतानुसार पेड़-पौधों को न केवल खाना बल्कि काटना भी पाप व अपराध हुआ, क्योंकि जिन पेड़-पौधों को हम काट रहे हैं, हो सकता है उनमें हमारे ही किसी सगे-संबंधियों की आत्मा विद्यमान हो।

स्वामी जी की दोनों बातें वेद विरूद्ध तो है हीं, अव्यावहारिक व अतार्किक भी हैं। मांस खाना धर्म शास्त्र व चिकित्सा विज्ञान दोनों की दृष्टि से मानव के लिए लाभकारी भी है और मानव की प्रकृति के अनुकूल भी। यह अलग विषय है कि किस पशु-पक्षी का मांस खाया जाए और किसका न खाया जाए तथा किस विधि से काटा जाए। दूसरी बात मानव, पशु व पेड़-पौधों में जीव भी एक जैसा नहीं है, मानव की जीवात्मा कर्म करने में स्वतंत्र व ईश्वर के प्रति जवाबदेह है, जबकि पशु व पेड़-पौधे आदि स्वभाव से बंधे हैं, न उन्हें अच्छे-बुरे का ज्ञान है और न ही किसी प्रकार की कोई स्वतंत्रता।

अहिंसा परमो धर्मः?

'योग सूत्र' के प्रणेता महर्षि पतंजलि ने योग के आठ अंगों का वर्णन किया है। योग का पहला अंग 'यम' है। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह इन पाँच को योग दर्शन में 'यम' कहा गया है।

'अहिंसा सत्या स्तेय ब्रह्मचर्या परिग्रहा यमाः।'

(योग दर्शन, २-३०)

जैन मत में उक्त पाँचों को व्रत कहा गया है। अहिंसा जैन मत का मुख्य तत्व है। यहाँ अहिंसा का मतलब किसी प्राणी को बिना किसी उद्देश्य के नुकसान न पहुंचाना है। निष्प्रयोजन किसी प्राणी की हत्या करना या चोट पहुंचाना यहाँ तक कि क्लेश पहुंचाना एवं आत्मभाव पर आघात करना हिंसा है। निष्प्रयोजन किसी पेड़ की टहनियाँ तोड़ना भी हिंसा के अन्तर्गत आता है। मगर कुछ पंथों के प्रणेताओं ने हिंसा की मनमानी व्याख्या की है। ''अहिंसा परमो धर्मः' का नारा देने वालों का कहना है कि किसी भी प्रकार की हिंसा पाप है चाहे वह प्रयोजनीय हो या निष्प्रयोजनीय। उक्त नारे का मूल निहितार्थ मांस भक्षण को निषिद्ध व पाप ठहराना था। जैन धर्म के प्रवर्तक महावीर स्वामी के बाद महात्मा बुद्ध ने भी अहिंसा का उपदेश दिया।

गौतम बुद्ध का जन्म एक क्षत्रिय परिवार में ५६३ ई०पू० लुम्बिनी नामक स्थान पर हुआ था। लुम्बिनी कपिलवस्तु के पड़ोस में है। इनके बचपन का नाम सिद्धार्थ था। सिद्धार्थ श्रेष्ठतर जीवन मूल्यों की तलाश में २९ वर्ष की आयु में घर से निकल गए। ६ वर्ष तक सच्चाई की तलाश में भटकते हुए एक दिन उन्हें बुद्धत्व प्राप्त हुआ और वे सिद्धार्थ से गौतम बुद्ध बन गए। गौतम बुद्ध के बाद भारतीय चिंतन में एक तूफ़ान-सा आ गया था, क्योंकि गौतम बुद्ध का सीधा टकराव वैदिक ब्राह्मणों से था।

वैदिक ब्राह्मण यज्ञ को प्रथम और उत्तम वैदिक संस्कार समझते थे। यह आर्यों का मुख्य धार्मिक कृत्य था। पशु बलि यज्ञ का मुख्य अंग थी। पशु बलि को बहुत ही पुण्य का कर्तव्य समझा जाता था। गौतम बुद्ध ने जब देखा कि आर्य लोग यज्ञ में निरीह पशुओं की बलि चढ़ाते हैं, तो यह देखकर उनका हृदय विद्रोह से भर उठा। आर्य धर्म के विरूद्ध उठने वाली क्रांति का प्रमुख कारण वैदिक पुरोहितवाद और हिंसा पूर्ण कर्मकांड ही था।

ईसा से करीब ५०० वर्ष पहले गौतम बुद्ध ने वैदिक धर्म पर जो सबसे बड़ा आरोप लगाया था वह यह था कि, ''पशु बलि का पुण्य कार्य और पापों के प्रायश्चित से क्या संबंध? पशु बलि धर्माचरण नहीं जघन्य पाप व अपराध है?''

यह एक विडंबना ही है कि गौतम बुद्ध के करीब २३५० वर्ष बाद आर्य समाज के संस्थापक, वेदों के प्रकांड पंडित स्वामी दयानंद सरस्वती ने इस्लाम पर जो सबसे बड़ा आरोप लगाया है वह यह है कि ''यदि अल्लाह प्राणी मात्र के लिए दया रखता है तो पशु बलि का विधान क्यों कर धर्म-सम्मत हो सकता है ? पशु बलि धर्माचरण नहीं जघन्य पाप व अपराध है।'' कैसी अजीब विडंबना है कि जो सवाल गौतम बुद्ध ने वैदिक ऋषियों से किया था, वही सवाल करीब २३५० वर्ष बाद एक वैदिक महर्षि मुसलमानों से करता है। जो आरोप गौतम बुद्ध ने आर्य धर्म पर लगाया था, वही आरोप कई शताब्दियों बाद एक आर्य विद्वान इस्लाम पर लगाता है।

धर्म का संपादन मनुष्य द्वारा नहीं होता। धर्म सृष्टिकर्ता का विधान होता है। धर्म का मूल स्रोत आदमी नहीं, यह अति प्राकृतिक सत्ता है। यह भी विडंबना ही है कि गौतम बुद्ध ने ईश्वर के अस्तित्व का इंकार करके वैदिक धर्म को आरोपित किया था, मगर स्वामी दयानंद सरस्वती ने ईश्वर के अस्तित्व का इकरार करके इस्लाम को आरोपित किया है।

प्राचीन भारतीय समाज में पशु बलि के साथ-साथ नर बलि की भी एक सामान्य प्रक्रिया थी। यज्ञ-याग का समर्थन करने वाले वैदिक ग्रंथ इस बात के साक्षी हैं कि न केवल पशु बलि बल्कि नर बलि की प्रथा भी एक ठोस इतिहास का परिच्छेद है। यज्ञों में आदमियों, घोड़ों, बैलों, मेंढ़ों और बकरियों की बलि दी जाती थी। रामधारी सिंह दिनकर ने अपनी मुख्य पुस्तक ''संस्कृति के चार अध्याय'' में लिखा

है कि यज्ञ का सार पहले मनुष्य में था, फिर वह अश्व में चला गया, फिर गो में, फिर भेड़ में, फिर अजा में, इसके बाद यज्ञ में प्रतीकात्मक रूप में नारियल-चावल, जौ आदि का प्रयोग होने लगा। आज भी हिंदुओं के कुछ संप्रदाय पशु बलि में विश्वास रखते हैं।

वेदों के बाद अगर हम रामायण काल की बात करें तो यह तथ्य निर्विवाद रूप से सत्य है कि श्री राम शिकार खेलते थे। जब रावण द्वारा सीता का हरण किया गया, उस समय श्री राम हिरन का शिकार खेलने गए हुए थे। उक्त तथ्य के साथ इस तथ्य में भी कोई विवाद नहीं है कि श्रीमद्भगवद्गीता के उपदेशक श्री कृष्ण की मृत्यु शिकार खेलते हुए हुई थी। यहाँ यह सवाल पैदा होता है कि क्या उक्त दोनों महापुरुष हिंसा की परिभाषा नहीं जानते थे? क्या उनकी धारणाओं में जीव हत्या जघन्य पाप व अपराध नहीं थी? क्या शिकार खेलना उनका मन बहलावा मात्र था ?

अगर हम उक्त सवाल पर विचार करते हुए यह मान लें कि पशु बलि और मांस भक्षण का विधान धर्मसम्मत नहीं हो सकता, क्योंकि ईष्वर अत्यंत दयालु और कृपालु है, तो फिर यहाँ यह सवाल भी पैदा हो जाता है कि जानवर, पशु, पक्षी आदि जीव हत्या और मांस भक्षण क्यों करते हैं। अगर अल्लाह की दयालुता का प्रमाण यही है कि वह जीव हत्या और मांस भक्षण की इजाज़त कभी नहीं दे सकता तो फिर शेर, बगुला, चमगादड़, छिपकली, मकड़ी, चींटी आदि जीवहत्या कर मांस क्यों खाते हैं? क्या शेर, मगरमच्छ, चमगादड़ आदि ईश्वर की रचना नहीं है?

शेर को जंगल का राजा कहा जाता है, वह जानवरों पर इतनी बेदर्दी और बेरहमी से हमला करता है कि जानवर दहाड़ मारने लगता है। मांसाहारी चमगादड़ों की एक बस्ती में लगभग २ करोड़ तक चमगादड़ें होती हैं। अगर चमगादड़ की एक बस्ती के एक रात के भोजन का अनुमान लगाये तो २ करोड़ की एक बस्ती एक रात में करीब २५०० कुंतल कीड़ों, कीटों आदि को चट कर जाती हैं। अगर इन कीड़ों, कीटों की तादाद का अनुमान लगाया जाए तो यह तादाद करीब १००० करोड़ से अधिक होती है। यह तो एक मामूली-सा उदाहरण मात्र है, यह दुनिया बहुत बड़ी है और इस ज़मीनी दुनिया से कहीं अधिक विस्तृत और विशाल तो समुद्री दुनिया है जहाँ एक जीव पूर्ण रूप से दूसरे जीव पर निर्भर है।

विश्व के मांस संबंधी आंकड़ों पर अगर हम एक सरसरी नज़र डालें तो आंकड़े बताते हैं कि प्रतिदिन ८ करोड़ मुर्गियां, २२ लाख सुअर, १३ लाख भेड़-बकरियां, ७ लाख गाय, करोड़ों मछलियां और अन्य पशु-पक्षी मनुष्य का लुक़मा बन जाते हैं। कई देश तो ऐसे हैं जो पूर्ण रूप से मांस पर ही निर्भर हैं। अब अगर मांस भक्षण को पाप व अपराध मान लिया जाए तो न केवल मनुष्य का जीवन बल्कि सृष्टि का अस्तित्व खतरे में पड़ जाएगा। जीव-हत्या को पाप मानकर तो हम खेती-बाड़ी का काम भी नहीं कर सकते, क्योंकि खेत जोतने और काटने में तो बहुत अधिक जीव-हत्या होती है।

विज्ञान के अनुसार पशु-पक्षियों की भांति पेड़-पौधों में भी जीवन (Life) है। अब जो लोग मांस भक्षण को पाप समझते हैं, क्या उनको इतनी-सी बात समझ में नहीं आती कि जब पेड़-पौधों में भी जीवन है तो फिर उनका भक्षण जीव-हत्या क्यों नहीं है? फिर मांस खाने और वनस्पति खाने में अंतर ही क्या है ? यहाँ अगर जीवन (Life) और जीव (Soul) में भेद न माना जाए तो फिर मनुष्य भी पशु-पक्षी और पेड़-पौधों की श्रेणी में आ जाता है। जीव केवल मनुष्य में है इसलिए ही वह अन्यों से भिन्न और उत्तम है।

विज्ञान के अनुसार मनुष्य के एक बार के वीर्य (Male generation fluid) स्राव (Discharge) में २ करोड़ शुक्राणुओं (Sperms) की हत्या होती है। मनुष्य जीवन में एक बार नहीं, बल्कि सैकड़ों बार वीर्य स्राव करता है। फिर मनुष्य भी एक नहीं करोड़ों हैं। अब अगर यह मान लिया जाए कि प्रत्येक शुक्राणु (Sperm) एक जीव है, तो इससे बड़ी तादाद में जीव हत्या और कहां हो सकती है ? करोड़ों-अरबों जीव-हत्या करके एक बच्चा पैदा होता है। अब क्या जीव-हत्या और ''अहिंसा परमों धर्मः'' की धारणा तार्किक और विज्ञान सम्मत हो सकती है।

जहाँ-जहाँ जीवन है वहाँ-वहाँ जीव (Soul) हो यह ज़रूरी नहीं। वृद्धि-ह्रास, विकास जीवन (Life) के लक्षण हैं जीव के नहीं। आत्मा वहीं है जहाँ कर्म भोग है और कर्म भोग वही हैं जहाँ विवेक (Wisdom) है। पशु आदि में विवेक नहीं है, अतः वहां आत्मा नहीं है। आत्मा नहीं है तो कर्म फल भोग भी नहीं है। आत्मा एक व्यक्तिगत अस्तित्व (Individual Existence) है जबकि जीवन एक विश्वगत अस्तित्व (Cosmic Existence) है। पशु और वनस्पतियों में कोई व्यक्तिगत

अस्तित्व नहीं होता। अतः उसकी हत्या को जीव हत्या नहीं कहा जा सकता। जब पशु आदि में जीव (Soul) ही नहीं है, तो जीव-हत्या कैसी ? पशु आदि में सिर्फ और सिर्फ जीवन है, जीव नहीं। अतः पशु-पक्षी आदि के प्रयोजन हेतु उपयोग को हिंसा नहीं कहा जा सकता।

शाकाहार का प्रोपगैंडा

अक्सर देखा गया है कि भारतीय संस्कृति के जितने भी विद्वान, चिंतक और सुधारक हुए हैं, उन सभी ने मांसाहार का प्रबल विरोध और कठोर शब्दों में निंदा की है। उनमें चाहे स्वामी दयानंद सरस्वती हो, स्वामी विवेकानंद हो, श्रीराम शर्मा आचार्य हो, आसाराम बापू हो, श्री रविशंकर हो या योग गुरु रामदेव हो। विडंबना देखिए कि मांसाहार का न वेद निषेध करते हैं न मनुस्मृति। न रामायण, महाभारत और न ही चरक संहिता में मांसाहार का निषेध है। न हमारा संविधान मांसाहार का निषेध करता है और न ही हमारा विज्ञान मांसाहार का विरोध करता है फिर हमारे गुरु, विद्वान और सुधारक मांसाहार का प्रबल विरोध आख़िर क्यों करते हैं ?

माह अक्टूबर २००६ की मासिक पत्रिका 'अखंड ज्योति' के एक विषय 'शाकाहार ही है प्राकृतिक आहार' में डाइट एंड फूड नामक कृति के लेखक वैज्ञानिक मनीषी डॉक्टर हेग के शब्दों को लिखा गया है - ''शाकाहार से शक्ति उत्पन्न होती है और मांस खाने से उत्तेजना बढ़ती है।'' यही कारण है कि समस्त धर्मग्रंथों ने एक स्वर से मांसाहार का निषेध किया है और इस बुराई पर अड़े रहने वालों को कटु शब्दों में धिक्कारा है। हिंदू धर्मग्रंथों के अतिरिक्त बाइबिल, कुरआन आदि सभी धर्मग्रंथों ने मांसाहार को हेय ठहराया है और निरीह प्रजातियों की हत्या को घोर दंडनीय अपराध कहा है।'' उक्त शब्द एक वैज्ञानिक मनीषी और डॉक्टर के हैं। जिन लोगों ने हिंदू शास्त्रों के अलावा बाइबिल और कुरआन का भी अध्ययन किया है वे लोग बखूबी अंदाजा लगा सकते हैं कि उक्त मनीषी को शास्त्रों का कितना ज्ञान था। उक्त मनीषी की शास्त्रों के प्रति अनभिज्ञता तो स्पष्ट हो ही रही है, यह वैज्ञानिक विज्ञान के तथ्यों और सत्यों से भी कतई अनभिज्ञ था।

पत्रिका में आगे विश्वविख्यात दार्शनिक पाइथागोरस के शब्दों में इस प्रकार लिखा है – ''ऐ मौत के फंदे में उलझे हुए इंसान ! अपनी तश्तरियों को मांस से सजाने के लिए जीवों की हत्या करना छोड़ दे। जो व्यक्ति भोले-भाले प्राणियों की गरदन पर छुरी चलवाता है, उनका करुण क्रंदन सुनता है, जो अपने हाथों पाले हुए पशु-पक्षियों की हत्या करके अपनी मौज मनाता है, उसे अत्यंत तुच्छ स्तर का व्यक्ति समझना चाहिए। जो पशुओं का मांस खा सकता है, वह किसी दिन मनुष्यों का भी खून पी सकता है।''

योग गुरु रामदेव ने अपने योग शिविर को संबोधित करते हुए कहा कि, ''अगर कोई मुझसे कहे कि एक अंडा खा लो, हम तुम्हें सारी दुनिया का मालिक बना देंगे, तो मैं फिर भी अंडा खाना पसंद नहीं करूंगा। लोग कहते हैं कि अंडे में प्रोटीन होता है, मैं कहता हूँ कि अंडे में प्रोटीन नहीं बल्कि पौट्टी (Latrine) होती है।'' पाठक अंदाज़ा लगा सकते हैं कि योग गुरु रामदेव की धारणा कितनी वैज्ञानिक और तर्कसंगत है। यहाँ यह भी विचारणीय है कि गुरु रामदेव जी गाय के मूत्र को रोगनाशक औषधि बताते हैं।

अखंड ज्योति में शास्त्रों के नाम से कहा गया है कि 'अन्न अर्थात् आहार के अनुसार ही मन बनता है। यह उक्ति जो कही गयी है उचित प्रतीत होती है। मगर मांसाहार से जोड़कर जो इसकी व्याख्या की गयी है वह क़तई असंगत है। इसमें मांसाहार का कही निषेध या विरोध नहीं है। इस उक्ति का मतलब तो यह है कि जो आहार हम खाये, वह शुद्ध, सात्विक और स्वच्छ होना चाहिए। वह मेहनत और ईमानदारी से कमाया हुआ होना चाहिए, न कि लूट खसोट, छीना झपटी, धोखाधड़ी, रिश्वत और ब्याज आदि का। हमारी इस नेक और खून-पसीने की कमाई में ग़रीब, असहाय, बीमार आदि का भी हिस्सा होना चाहिए। अगर हम चोरी का, लूट-खसोट का, बेईमानी का अन्न खायेंगे तो उसका प्रभाव अवश्य हमारे मन मस्तिष्क पर पड़ेगा। लेख में जो कहा गया है कि मांस खाने से मनुष्य के अन्दर बर्बरता और क्रूरता बढ़ती है, यह तथ्य बिल्कुल अतार्किक और अव्यावहारिक है। प्रायः देखने में आता है कि हिंदू समाज में मांसाहार का विरोध पाया जाता है, मगर इस समाज में भ्रूण हत्या की दर अन्य क़ौमों से कम नहीं है। इससे अधिक क्रूरता और बर्बरता की बात और क्या होगी कि एक औरत अपने पेट के बच्चे तक को पैसे देकर कत्ल (Abortion)

करा रही है। क्या यह क्रूरता मांसाहार से उत्पन्न प्रवृत्ति की देन है? ३१ अक्टूबर सन् १९८४ को भारत की प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी की अपने ही सिख अंगरक्षकों द्वारा हत्या कर दी गई। इंदिरा गांधी की मृत्यु के बाद पूरी सिख क़ौम को दोषी मानते हुए लगभग ४००० सिखों को बेदर्दी से कत्ल किया गया। पूरे के पूरे परिवारों को जिंदा जला दिया गया। यहां सवाल यह पैदा होता है कि क्या यह सब करने वाले मांसाहारी थे?

२००२ में गोधरा कांड के बाद गुजरात में मुसलमानों पर जो जुल्म हुआ, वहां जो बर्बरता और क्रूरता का नंगा नाच हुआ, क्या वे सब करने वाले मांसाहारी थे? कुछ हिंदू विद्वान और गुरु यह भी प्रचारित कर रहे हैं कि ''ग्लोबल वार्मिंग का एक कारण मांसभक्षण भी है।'' यह तथ्य भी विज्ञान और प्रकृति के बिल्कुल विपरीत है। वास्तविकता तो यह है कि स्रष्टा ने प्राकृतिक संतुलन के लिए एक जीव को दूसरे जीव पर निर्भर बनाया है। मांसभक्षण प्रकृति की एक अनिवार्य क्रिया है। भोजन को मांसाहार और शाकाहार दो हिस्सों में बांटना एक धोखा है, अंधविश्वास है। आज विज्ञान के युग में, जबकि हमें प्रत्येक जीव और वनस्पति की हिस्ट्री और कैमिस्ट्री मालूम है, फिर भी आज हमारे तथाकथित गुरु अपने धर्मशास्त्रों, वैज्ञानिक सत्यों और प्राकृतिक व्यवस्था का विरोध न जाने क्यों कर रहे हैं? आज हम सम्पूर्ण वनस्पति जगत, प्राणि जगत और विशाल समुद्री जगत की वास्तविकता घर बैठे देख रहे हैं इसलिए यह बात आसानी से समझ सकते हैं कि अगर विश्व में मांसाहार पर १०० प्रतिशत प्रतिबंध लगा दिया जाए तो क्या हम ७०० करोड़ लोगों की आहार पूर्ति केवल अनाज से कर पायेंगे ? हमारी सम्पूर्ण पृथ्वी का ३० प्रतिशत थल और लगभग ७० प्रतिशत समुद्र है। ३० प्रतिशत थल में भी पहाड़ है, रेगिस्तान है, वन खंड है, बंजर है, नदी-नाले हैं, आवास हैं, जो कृषि योग्य भूमि है वह अत्यंत ही कम है। इस कृषि योग्य भूमि से मानव जाति की आहार पूर्ति संभव नहीं है फिर आख़िर यह बात हमारी समझ में क्यों नहीं आती कि मांस भक्षण मानव जाति की आहार पूर्ति के लिए अपरिहार्य है। इसका हमारे पास अन्य कोई विकल्प नहीं है। अगर मांस भक्षण पर प्रतिबंध लगा दिया जाए तो अंदाज़ा लगाइए कि एक रोटी की कीमत क्या होगी ? मांस एक प्राकृतिक आहार है। मांस भक्षण का विरोध करना प्राकृतिक व्यवस्था के ख़िलाफ़ है। शाकाहारवाद एक अप्राकृतिक धारणा है, इसे कभी पूर्णतया

लागू ही नहीं किया जा सकता। आने वाले समय में तो कुछ ऐसा लगता है कि मनुष्य की आहार पूर्ति केवल समुद्र (Sea Food) से होगी और सच भी यही है कि अति विशाल समुद्र ही हमारी आहार पूर्ति का मूल स्रोत है। जो शाकाहारवादी (Extremist Vegetarianism) मांसाहार का पुरज़ोर विरोध कर रहे हैं, उन्हें अपनी रुढ़िवादी और मिथ्या धारणा पर पुनर्विचार करना चाहिए। प्राकृतिक सत्यों को झुठलाना स्वयं को अज्ञानी और अंधविश्वासी साबित करना है।

यहां मेरा उद्देश्य मांसाहार को प्रोत्साहित करना हरगिज़ नहीं है, जिसे जो खाना है खाये। यह समाज, राष्ट्र और विश्व की कोई ज्वलंत समस्या नहीं है। यहां मेरा उद्देश्य मात्र इतना है कि हम कोई ऐसा भ्रामक प्रचार न करें जिसका हमारे समाज पर निकट भविष्य में बुरा और प्रतिकूल प्रभाव पड़े।

मरणोत्तर जीवन : तथ्य और सत्य

स्वामी दयानंद सरस्वती ने 'सत्यार्थ प्रकाश' के नवम समुल्लास में आवागमनीय पुनर्जन्म की धारणा का प्रतिपादन करते हुए लिखा है, ''पूर्व जन्म के पुण्य-पाप के अनुसार वर्तमान जन्म और वर्तमान तथा पूर्व जन्म के कर्मानुसार भविष्यत् जन्म होते हैं।'' (९-७३)

इस विषय में लोगों ने स्वामी जी से कुछ प्रश्न भी किए हैं, जो निम्नवत् हैं :-

१. जन्म एक है या अनेक ? (९-६७)
२. जन्म अनेक हैं तो पूर्व जन्म और मृत्यु की बातों का स्मरण क्यों नहीं रहता? (९-६८)
३. मनुष्य और पश्वादि के शरीर में जीव एक जैसा है या भिन्न-भिन्न जाति का? (९-७४)
४. मनुष्य का जीव पश्वादि में और पश्वादि का मनुष्य के शरीर में आता जाता है या नहीं? (९-७५)
५. मुक्ति एक जन्म में होती है या अनेक में ? (९-७६)

स्वामी जी उपरोक्त प्रश्नों का उत्तर निम्न प्रकार देते हैं :-

१. जन्म अनेक हैं।
२. जीव अल्पज्ञ है, त्रिकालदर्शी नहीं, इसलिए पूर्व जन्म का स्मरण नहीं रहता।
३. मनुष्य व पश्वादि में जीव एक सा है।
४. पाप-पुण्य के अनुसार मनुष्य का जीव पश्वादि में और पश्वादि का मनुष्य शरीर में आता जाता है।
५. मुक्ति अनेक जन्मों में होती है।

मनुस्मृति के हवाले से स्वामी जी ने लिखा है :-

''स्थावराः कृमि कीटाश्च मत्स्याः सर्पाश्च कच्छपाः।
पशवश्च मृगाश्चैव जघन्या तामसी गतिः।'' (९-८३)

भावार्थ : ''जो अत्यंत तमोगुणी है वो स्थावर वृक्षादि, कृमि, कीट, मत्स्य, सर्प्प, कच्छप, पशु और मृग के जन्म को प्राप्त होते हैं।''

वेदों के पुरोधा और शोधक महर्षि दयानंद ने अपनी पुस्तक ऋग्वेदादि भाष्य-भूमिका के पुनर्जन्म अध्याय में पुनर्जन्म के समर्थन में ऋग्वेद मंडल-१० के दो मंत्रों के साथ अथर्ववेद व यजुर्वेद के मंत्र भी प्रस्तुत किए हैं :-

१. ''आ यो धर्माणि प्रथमः ससाद ततो वपूंषि कृणुषे पुरूणि।
धास्युर्योनि प्रथमः आ विवेशां यो वाचमनुदितां चिकेत''।।
(अथर्व० कां०-५, अनु०-१, मं०-२)

भाषार्थ : ''जो मनुष्य पूर्वजन्म में धर्माचरण करता है, उस धर्माचरण के फल से अनेक उत्तम शरीरों का धारण करता है और अधर्मात्मा मनुष्य नीच शरीर को प्राप्त होता। जो पूर्वजन्म में किए हुए पाप पुण्य के फलों को भोग करके स्वभावयुक्त जीवात्मा है वह पूर्व शरीर को छोड़कर वायु के साथ रहता है, पुनः जल, औषधि व प्राण आदि में प्रवेश करके वीर्य में प्रवेश करता है। तदनन्तर योनि अर्थात् गर्भाशय में स्थिर होकर पुनः जन्म लेता है। जो जीव अनूदित वाणी अर्थात् जैसी ईश्वर ने वेदों में सत्य भाषण करने की आज्ञा दी है, वैसा ही यथावत् जान के बोलता है, और धर्म ही में यथावत स्थित रहता है, वह मनुष्य योनि में उत्तम शरीर धारण करके अनेक सुखों को भोगता है और जो अधर्माचरण करता है वह अनेक नीच शरीर अथवा कीट, पतंग, पशु आदि के शरीर को धारण करके अनेक दुखों को भोगता है।''

२. ''द्वे सतीऽ अशृणावं पितृणामहं देवानामुत मर्त्यानाम्।
ताभ्यामिदं विश्वमेजत्समेति यदन्तरा पितरं मातरं च।।''
(यजु० अ०-१६, मं०-४७)

भाषार्थ : ''इस संसार में हम दो प्रकार के जन्मों को सुनते हैं। एक मनुष्य शरीर का धारण करना और दूसरा नीच गति से पशु, पक्षी, कीट, पतंग आदि का होना। इनमें मनुष्य शरीर के तीन भेद हैं, एक पितृ अर्थात् ज्ञानी होना, दूसरा देव अर्थात् सब विधाओं को पढ़कर विद्वान होना, तीसरा मर्त्य अर्थात् साधारण मनुष्य का शरीर धारण करना। इनमें प्रथम गति अर्थात् मनुष्य शरीर पुण्यात्माओं और पुण्यपाप तुल्य वालों का होता है और दूसरा जो जीव अधिक पाप

करते हैं उनके लिए है। इन्हीं भेदों से सब जगत् के जीव अपने-अपने पुण्य और पापों के फल भोग रहे हैं। जीवों को माता और पिता के शरीर में प्रवेश करके जन्म धारण करना, पुनः शरीर का छोड़ना, फिर जन्म को प्राप्त होना, बारंबार होता है।''

यहाँ एक बड़ा सवाल यह पैदा होता है कि कभी सृष्टि का प्रारम्भ तो अवश्य हुआ होगा, चाहे वह करोड़ों साल पहले हुआ हो, सृष्टि के प्रारम्भ में मनुष्य के जन्म का सैद्धांतिक आधार क्या था? जैसा कि स्वामी जी ने लिखा है कि ''प्रथम सृष्टि के आदि में परमात्मा ने अग्नि, वायु, आदित्य तथा अंगिरा इन ऋषियों की आत्मा में एक-एक वेद का प्रकाश किया। (७-८६) आगे क्रम सं० ८८ में लिखा है कि वे ही चार सब जीवों से अधिक पवित्रात्मा थे, अन्य कोई उनके सदृश नहीं था। यहाँ सवाल यह है कि सृष्टि के आदि में पूर्व पुण्य कहाँ से आया? इस सवाल का कोई तर्कपूर्ण और न्यायसंगत जवाब स्वामी जी ने अपने ग्रंथों में कहीं नहीं लिखा।

स्वामी जी ने स्वर्ग, नरक, पुनर्जन्म, परलोक चार शब्दों की ग़लत और भ्रामक व्याख्या की है। नवम समुल्लास के क्रम सं० ७६ में लिखा है कि सुख विशेष स्वर्ग और विषय तृष्णा में फंसकर दुःख विशेष भोग करना नरक कहलाता है। जो सांसारिक सुख है वह स्वर्ग और जो सांसारिक दुःख है वह नरक है। जबकि वैदिक धारणा और शब्दकोष के अनुसार स्वर्ग और नरक स्थान विशेष का नाम है। इसी प्रकार पुनः का अर्थ दोबारा है न कि बार-बार। जैसे पुनर्विवाह, पुनर्निर्माण वैसे ही पुनर्जन्म। चतुर्थ समुल्लास में स्वामी दयानंद ने मनुस्मृति के कुछ श्लोकों द्वारा परलोक के सुख हेतु उपाय बताए हैं। यहाँ स्वामी जी ने परलोक और परजन्म दोनों को एक ही अर्थ में लिया है। (४-१०६) मनुस्मृति के जो श्लोक उन्होंने उद्धरित किए हैं वे परलोक की सफलता पर केन्द्रित हैं न कि आवागमनीय पुनर्जन्म पर। स्वामी जी की धारणाओं और तथ्यों में प्रचुर विरोधाभास पाया जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि वेद विषयों पर स्वामी जी की जानकारी संदिग्ध थी।

मनुष्य चाहे जन्मना हिंदू हो, यहूदी हो, ईसाई हो या मुसलमान या अन्य किसी धर्म, मत व पंथ को मानने वाला हो, सबके जीवन का मूल स्रोत एक ही है। सब एक माँ-बाप की संतान हैं, सब परस्पर भाई-भाई हैं। यह तथ्य न केवल वेद और कुरआन सम्मत है बल्कि

विज्ञान सम्मत भी है। इसके साथ एक सर्वमान्य तथ्य यह भी है कि मनुष्य चाहे एक हजार साल जिन्दा रहे, उसकी मृत्यु सुनिश्चित है। मृत्यु जीवन की अनिवार्य नियति है। इस नियति से जुड़ा है मानव जीवन का एक बड़ा अहम सवाल कि हमें मृत्योपरांत कहाँ जाना है ? मृत्योपरांत हमारा क्या होगा ? इस एक अहम सवाल से जुड़ी है हमारे जीवन की सारी आध्यात्मिकता (Spirituality) और सर्वांग सम्पूर्णता। आइए इस अहम विषय पर एक तथ्यपरक दृष्टि डालते हैं।

जड़वादियों (Materialist) का मानना है कि यहीं आदि है और यहीं अंत है। (Death is end of life) ''भस्मी भूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः।'' देह भस्म हो गया फिर आना-जाना कहाँ? अनीश्वरवादी (Atheist) महात्मा गौतम बुद्ध ने कहा, ''भला करो, भले बनो, मृत्योपरांत क्या होगा ? यह प्रश्न असंगत है, अव्याकृत है।'' हिंदुवादियों (Polytheist) का मानना है कि वनस्पति, पशु-पक्षी और मनुष्यादि में जीव (Soul) एक सा है और कर्मानुसार यह जीव (Soul) वनस्पति योनि, पशु योनि और मनुष्य योनि में विचरण करता रहता है। जीवन-मरण की यह अनवरत श्रृंखला है। रामचरितमानस के लेखक गोस्वामी तुलसीदास के मतानुसार कुल चौरासी लाख योनियों में २७ लाख स्थावर, ९ लाख जलचर, ११ लाख पक्षी, ४ लाख जानवर और २३ लाख मानव योनियाँ हैं। हिंदू धर्मदर्शन के मनीषियों ने इस अवधारणा को आवागमनीय पुनर्जन्म का नाम दिया है।

इस अवधारणा (Cycle of Birth & Death) के संदर्भ में हिंदू धर्मदर्शन के चिंतकों का एक मजबूत तीर व तर्क है कि संसार में कोई प्राणी अंधा जन्मता है, कोई गूंगा और लंगड़ा जन्मता है। कोई प्रतिभाशाली तो कोई निपट मूर्ख जन्मता है। यहाँ कोई खूबसूरत है, कोई बदसूरत है। कोई निर्धन है तो कोई धनवान है। कोई हिंदू जन्मता है तो कोई मुसलमान जन्मता है। कोई ऊँची जात है तो कोई नीची जात है। जन्म के प्रारम्भ में ही उक्त विषमताएं पिछले जन्म का फल नहीं तो और क्या हैं? इसी धारणा के साथ हिंदू मनीषियों की यह भी मान्यता है कि मनुष्य योनि पूर्व जन्म के अच्छे कर्मों से मिलती है। ''बड़े भाग मानुष तनु पाया''। यहाँ हिंदू चिंतकों के उक्त दोनों तथ्यों में असंगति स्पष्ट प्रतीत होती है।

अगर यह मान लिया जाए कि यहाँ की सभी विषमताएं पूर्वकृत कर्मों का लेखा है। एक मनुष्य दूसरे को इसलिए मार रहा है

कि उसने पिछले जन्म में उसे मारा है। एक मनुष्य यहाँ इसलिए जुल्म कर रहा है कि पिछले जन्म में उस पर जुल्म किया गया है। फिर तो यह एक युक्तियुक्त स्थिति है। अगर यह मान्यता सत्य है फिर तो मामला सस्ते में ही निपट जाता है। फिर तो इस विषमता को दूर करने के सारे प्रयास न केवल बेकार हैं बल्कि प्रयास करना ही बेवक़ूफ़ी है। यहाँ जो हो रहा है सब कुछ तर्कसंगत और न्यायसंगत है। लूटमार, मारकाट, अनाचार, अत्याचार यदि सभी कुछ पूर्व कर्मों का फल है तो फिर न कोई पाप-पुण्य का आधार बनता है न ही सही-ग़लत बाकी रहता है। यहाँ यह विचारणीय है कि यदि मनुष्य योनि पूर्व जन्म के अच्छे कर्मों से मिलती है तो फिर कोई जन्म से अंधा, बहरा, लंगड़ा और जड़बुद्धि क्यों ? दूसरा विचारणीय तथ्य है कि यदि इस जन्म की अपंगता पिछली योनि के कर्मों का फल है तो न्याय की मांग है कि दण्डित व्यक्ति को यह जानकारी होनी चाहिए कि उसने पूर्वजन्म में किस योनि में क्या पाप व दुष्कर्म किया है जिसके कारण उसे यह सज़ा मिली है ताकि सुधार की संभावना बनी रहे। अगर अपंग व्यक्ति को पूर्व योनि में किए दुष्कर्म और पापकर्म का पता नहीं है और सत्य भी यही है कि उसे कुछ पता नहीं है तो क्या आवागमनीय पुनर्जन्म की धारणा पूर्णतया भ्रामक और क़तई मिथ्या नहीं हो जाती ?

आज अध्यात्म को छोड़ हम अधिभूत में डूबते जा रहे हैं। एक तरफ नैतिक पतन की पराकाष्ठा, अनाचार, अत्याचार, बिगाड़ बढ़ता जा रहा है, दूसरी तरफ उत्तम और दुर्लभ मनुष्य योनि (Population) बढ़ती जा रही है। किस तरह समझें इस पूर्वजन्म और पुनर्जन्म को ? विज्ञान इस तथ्य की तह तक पहुंच गया है कि इस सृष्टि का आदि भी है और अंत भी है। आधुनिक विज्ञान के अनुसार सृष्टि का प्रारम्भ एक महाविस्फोट (Big Bang Theory) से हुआ और अंत भी इसी प्रकार होगा। फिर जन्म-मरण की अनवरत श्रृंखला को कैसे सत्य माना जा सकता है ?

आवागमनीय पुनर्जन्म की अवधारणा का तीन तत्व जीवन तत्व (Life), चेतन तत्व (Consciousness) और आत्म तत्व (Soul) के आधार पर वैज्ञानिक विश्लेषण करें तो हम पाते हैं कि वनस्पतियों में केवल जीवन तत्व (Life) होता है, चेतन तत्व (Consciousness) और आत्म तत्व (Soul) नहीं होता। यदि वनस्पतियों में भी वही चेतन तत्व (Consciousnss) होता जो पशु-पक्षियों में होता है, तो फिर वनस्पतियों

का भक्षण भी उसी प्रकार पाप व अपराध होता जिस प्रकार तथाकथित पुनर्जन्मवादी पशु-पक्षियों का मांस खाने में मानते हैं। अब यदि जीव-जन्तुओं और पशु-पक्षियों में भी वही चेतन तत्व (Moral Sense) और आत्म तत्व (Soul) होता जो मनुष्य में है तो पशु-पक्षियों को मारना भी उतना ही पाप व अपराध होता जितना मनुष्यों को मारने में होता है। पेड़-पौधों और पशुओं में वह चेतन तत्व व आत्म तत्व नहीं होता जो कर्म कराता है और कर्मफल भोगने का कारण बनता है। वृक्ष-वनस्पति और पशुओं में केवल इनकमिंग सुविधा है जबकि मनुष्यों में इनकमिंग के साथ-साथ आउट गोइंग सुविधा भी है जिससे कर्म लेखा (Account of Deeds) तैयार होता है। मनुष्य इसलिए तो सर्वश्रेष्ठ प्राणी है कि परम तत्व (God) ने उसे विवेक (Wisdom) और विचार (Thinking) प्रदान किया है जो किसी अन्य को नहीं किया है। जहाँ जीवन है वहाँ चेतना और आत्मा का होना अनिवार्य नहीं। आत्मा (Soul), चेतना (Consciousness) और प्रज्ञा (Knowledge) वहीं है जहाँ कर्म (Right and Wrong Deed) है। पशुओं में नींद, भूख, भय और मैथुन आदि दैहिक क्रियाएं (Physical Process) तो है मगर विवेक संबंधी क्रियाएं (Ethical Process) नहीं है। मनुष्य आत्मा अतः (Soul) में ही ज्ञानत्व, कर्तृत्व और भौक्तृत्व ये तीनों निहित हैं। इसलिए वेद और कुरआन मनुष्य जाति के लिए है न कि पशु और वनस्पति जगत के लिए।

कीट-पतंगे और पशु पक्षी नैसर्गिक जीवन व्यतीत करते हैं। एक वृक्ष और एक पशु को यह विवेक नहीं दिया गया है कि वे इस विशाल ब्रह्मांड में अपने अस्तित्व का कारण तलाश करें। पशुओं के सामने न कोई अतीत होता है न कोई भविष्य। भय, भूख, नींद, मैथुन आदि क्रियाओं के होते हुए भी पशु एक बेफिक्र रचना (Careless Creature) है, चेतनाहीन (In a State of Stupid) कृति है। पेड़-पौधे, पशु-पक्षी तो मनुष्य जीवन की सामग्री मात्र है। इनकी रचना को मनुष्य योनि के पाप-पुण्य से जोड़ना नादानी की बात है।

देखने और सुनने की क्षमता के बावजूद एक बकरी कसाई और चरवाहे में फ़र्क नहीं करती। देखने और सुनने की क्षमता के बावजूद एक गाय मालिक और दुश्मन के खेत में अंतर नहीं करती। इससे सुस्पष्ट है कि पश्वादि में आत्मचेतना (Moral Mind) नहीं होती। विवेक (Wisdom) और विचार (Thinking) नहीं होता। जब पश्वादि में

न विवेक है, न विचार है, न कोई आचार संहिता (Code of Conduct) है तो फिर कर्म और कर्मफल कैसा? विचित्र विडंबना है कि हिंदू धर्म दर्शन ने पेड़-पौधों, पशुओं और मनुष्य को एक ही श्रेणी में रखा है। क्या यह अवधारणा तर्कसंगत और न्यायसंगत हो सकती है कि एक योनि चिंतन (Thinking Power) और चेतना (Moral Sense) रखने के बावजूद चिंतनहीन (Thoughtless) और चेतना विहीन (Unconsciousness) योनि में अपने कर्मों का फल भोगे? कैसी अज़ीब धारणा है कि पाप कर्म करें मनुष्य और फल भोगे गधा और विवेकहीन वृक्ष?

यहाँ यह भी विचारणीय है कि दंड और पुरस्कार का सीधा संबंध विवेक, विचार और कर्म से है। दूसरी बात बिना पेशी, बिना गवाह, बिना सबूत, बिना प्रतिवादी कैसी अदालत, कैसा न्याय? एक व्यक्ति को बिना किसी चार्जशीट के अंधा, लंगड़ा, जड़बुद्धि बना दिया जाए या कीट, कृमि, कुत्ता बना दिया जाए या पशु को मनुष्य बना दिया जाए, यह कैसा इंसाफ, कैसा कानून ? क्या इसे कोई कानून कहा जा सकता है ? न्यायसंगत और तर्कसंगत तो यह है कि फल भोगने वाले को सज़ा या पारितोष का एहसास हो और यह तभी संभव है कि जब कर्म करने वाला उसी शरीर व चेतना के साथ फल भोगे, जिस शरीर व चेतना के साथ उसने कर्म किया है।

उपर्युक्त तथ्यों और तर्कों से सिद्ध हो जाता है कि आवागमनीय पुनर्जन्म की धारणा एक अबौद्धिक और अवैज्ञानिक धारणा है। इस मिथ्या व कपोल-कल्पित मान्यता ने करोड़ों मनुष्यों को जीवन के मूल उद्देश्य से भटका दिया है। यह धारणा मनुष्य जीवन का कोई लक्ष्य निर्धारित नहीं करती। मनुष्य के सामने कोई उच्च लक्ष्य न हो, कोई दिशा न हो तो वह जाएगा कहाँ? विचित्र विडंबना है कि जीवन है मगर कोई जीवनोद्देश्य नहीं है। बिना किसी जीवनोद्देश्य के साधना और साधन सब व्यर्थ हो जाता है। यात्रा में हमारे पास कितनी भी सुख-सुविधा, सामग्री, साधन हो, मगर यह पता न हो कि जाना कहाँ है? हमारी दिशा, हमारी मंजिल, हमारा गंतव्य क्या है तो हम जाएंगे कहाँ? दिशा और गंतव्य निश्चित हो तभी तो गंतव्य की दिशा की तरफ चला जा सकता है। अगर दिशा का भ्रम हो तो मनुष्य कभी सही दिशा की तरफ नहीं बढ़ सकता। एक व्यक्ति दौड़ा जा रहा है और उसे पता न हो कि किधर और कहाँ जाना है तो क्या लोग उसे बेवकूफ़ नहीं कहेंगे?

हमारे जीवन में भौतिक कारणों, अकारणों का बड़ा महत्व है। यहाँ किसी का विकलांग, निर्धन, रोगी अथवा स्वस्थ, सुन्दर और धनी होना पिछले कर्मों का प्रतिफल नहीं है। यह विषमता भौतिक, प्राकृतिक और सामाजिक असंतुलन का परिणाम है। कभी चेचक व पोलियों आदि बीमारियों को मनुष्य का भाग्य और पूर्वजन्म का फल समझा जाता था मगर आज वैज्ञानिक प्रयोगों और प्रयासों द्वारा मनुष्य ने इन पर विजय प्राप्त कर ली है। यहाँ के परिणाम किसी पूर्वकृत योनियों के सत्कर्म या पाप कर्म के परिणाम नहीं हैं। यहाँ की विषमता को समझने के लिए हमें सृष्टिकर्ता की योजना (Creation Plan of God) को भी समझना होगा।

ब्रह्मांड की विशालता, एक सूत्रता और दिन-रात का प्रत्यावर्तन बता रहा है कि यह सृष्टि (Creation) किसी तीर-तुक्के की परिणति नहीं है, इसमें स्रष्टा (Creator) का कोई उच्च प्रयोजन छिपा है। हम इहलोक में देखते हैं कि अक्सर बेईमान, स्वार्थी, धूर्त लोग फल फूल रहे हैं, ईमानदार, ग़रीब, श्रमजीवी लोग पिस रहे हैं। दुष्ट प्रवृत्ति के लोगों का फूलना-फलना न्याय और नीति की बात नहीं हो सकती। कुकृत्यों की परिणति सुखदायी कभी नहीं हो सकती।

स्पष्ट है कि कुकृत्यों के परिणाम यहाँ प्रकट नहीं हो रहे हैं। न्याय और प्रतिहार के लिए यह संसार अपूर्ण है। बुद्धि की मांग है कि कोई ऐसी जगह (Place of Judgement) हो जहाँ दुष्कर्मी और अत्याचारी व्यक्ति के कर्मों का पूर्ण विवरण मय गवाह व सबूतों के प्रस्तुत हो और पीड़ित व्यक्ति अपनी आंखों के सामने उसे दंड और सजा भोगते देखें। वर्तमान लोक में ऐसी न्याय व्यवस्था (Judicature) की क़तई कोई संभावना नहीं है। अतः पूर्ण और निष्पक्ष न्याय के लिए आवश्यक है कि जब सम्पूर्ण मानवता का कृत्य समाप्त हो जाए तो एक नई दुनिया में हमारा पुनर्जन्म (Re-incarnation) हो अथवा हमें पुनर्जीवन (Resurrection) प्राप्त हो। हिंदू मनीषियों ने पुनर्जन्म (Re-incarnation) को ग़लत अर्थों में परिभाषित किया है। पुनर्जन्म शब्द का अर्थ बार-बार जन्म लेने से कदापि नहीं है। पुनर्जन्म शब्द का अर्थ एक बार न्याय के दिन (Day of Judgement) जन्म लेने से है। हिंदू धर्म ग्रंथों में प्रलय, पितर लोक, परलोक, स्वर्ग, नरक आदि शब्दों का बार-बार प्रयोग उक्त तथ्य की पुष्टि करता है।

यह जगत एक क्रियाकलाप (Activation) है। तैयारी

(Examination) है, एक दिव्य जीवन के लिए, पारलौकिक जीवन के लिए। सांसारिक अभ्युद्‌य मानव जीवन का लक्ष्य नहीं है। लक्ष्य है पारलौकिक जीवन की सफलता। भौतिक सुख-सुविधा सामग्री केवल ज़रूरत मात्र है। यहाँ जब हम वह कुछ हासिल कर लेते हैं जो हम चाहते हैं, तो हमारे मरने का वक़्त क़रीब आ चुका होता है। हम बिना किसी निर्णय, न्याय, परिणाम के यहाँ से विदा हो जाते हैं। धन, दौलत, बच्चें आदि सब यही रह जाता है। अगर हम यह मानते हैं कि जो कर्म हमने यहाँ किए हैं, उनके परिणाम स्वरूप हम जीव-जन्तु, पेड़-पौधा या मनुष्य बनकर पुनः इहलोक में आ जाएंगे तो यह एक आत्मवंचना (Self Deception) है। हमें इस धारणा की युक्ति-युक्तता पर गहन और गम्भीर चिंतन करना चाहिए। पारलौकिक जीवन की सफलता मानव जीवन का अभीष्ट (Desired) है। यही है मूल वैदिक और क़ुरआनी अवधारणा और साथ-साथ बौद्धिक और वैज्ञानिक भी।

दाह संस्कार : कितना उचित ?

'सत्यार्थ प्रकाश' में स्वामी दयानंद सरस्वती ने एक प्रश्न की समीक्षा में लिखा है कि मुर्दे को गाड़ने से संसार की बड़ी हानि होती है, क्योंकि वह सड़कर वायु को दुर्गन्धमय कर रोग फैला देता है। स्वामी जी आगे लिखते हैं कि मुर्दों को गाड़ने से अधिक भूमि खराब होती है। कब्रों को देखने से भय भी होता है, इसलिए गाड़ना आदि सर्वथा निषिद्ध है। लिखा है कि मुर्दों को सबसे बुरा गाड़ना है, उससे कुछ थोड़ा बुरा जल में डालना है, उससे कुछ एक थोड़ा बुरा जंगल में छोड़ना है और जो जलाना है वह सर्वोत्तम है, क्योंकि उसके सब पदार्थ अणु होकर वायु में उड़ जाते हैं। किसी ने स्वामी जी से कहा कि जिससे प्रीति हो उसको जलाना अच्छी बात नहीं है। गाड़ना तो ऐसा है जैसा उसको सुला देना है। इसलिए गाड़ना अच्छा है। स्वामी जी कहते हैं कि जो मृतक से प्रीति करते हो तो अपने घर में क्यों नहीं रखते ? और गाड़ते भी क्यों हो ? जिस जीवात्मा से प्रीति थी वह तो निकल गया, अब दुर्गन्धमय मिट्टी से क्या प्रीति ? जो प्रीति करते हों तो उसको पृथ्वी में क्यों गाड़ते हो, क्योंकि किसी से कोई कहे कि तुझको भूमि में गाड़ देवे तो वह सुनकर प्रसन्न कभी नहीं होता। (१३-४०, ४१, ४२)

एक सामान्य व्यवहार की बात है कि अगर बस्ती के पास कोई बदबूदार गंदगी या कोई जानवर जैसे चूहा, बिल्ली, कुत्ता आदि मरा पड़ा हो तो बदबू से बचने के लिए बस्ती के लोग उसे मिट्टी में दबा देते हैं ताकि बदबू फैलकर मनुष्यों को प्रभावित न करे। मनुष्य की अंतरात्मा कभी यह गवारा न करेगी कि किसी मृत जानवर को जलाया जाए। अगर कोई व्यक्ति किसी मृत जानवर को जलाएगा तो उसे अवश्य घिन आएगी। दूसरी यह बात भी सामान्य सी है कि जब

किसी वस्तु आदि को जलाया जाता है तो उससे अवश्य वायु प्रदूषित होती है। मृत मनुष्यों को जलाना तो वस्तु आदि के जलाने से कहीं अधिक हानिकारक और ख़तरनाक है क्योंकि मृत मनुष्य को जलाने से न केवल वायु प्रदूषित होती है बल्कि रोगजनित गैसे भी निकलती हैं, जिनका प्रभाव मानव जीवन पर प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से अवश्य पड़ता है। तीसरा एक मानवीय पहलू यह भी है कि जिस व्यक्ति के साथ हमने जीवन गुजारा है, जो हमारी आदरणीय माँ, बाप, प्रिय पत्नी, पुत्र व पुत्री आदि है, मरने के बाद उसे अपनी आँखों के सामने, अपने ही हाथों से आग में रखना व उसकी हड्डियों तक को भस्मीभूत कर देना कहाँ की मानवता है ? क्या यह क्रिया दिल दहला देने वाली नहीं है ? इस विषय से जुड़ा एक अनैतिक व अमानवीय पहलू यह भी देखने में आता है कि जब किसी लाश को जलाया जाता है तो कफ़न पहले जलता है और लाश नंगी हो जाती है। यह वाकिया मानवता को शर्मसार करने वाला होता है। लाश अगर माँ अथवा औरत की हो तो इससे अधिक निर्लज्जता की बात क्या कोई और हो सकती है?

स्वामी दयानंद सरस्वती ने दाह संस्कार की जो विधि बताई है वह विधि दफ़नाने की अपेक्षा कहीं अधिक महंगी है। जैसा कि स्वामी जी ने लिखा है कि मुर्दे के दाह संस्कार में शरीर के वज़न के बराबर घी, उसमें एक सेर में रत्ती भर कस्तूरी, माशा भर केसर, कम से कम आधा मन चन्दन, अगर, तगर, कपूर आदि और पलाश आदि की लकड़ी प्रयोग करनी चाहिए। मृत दरिद्र भी हो तो भी बीस सेर से कम घी चिता में न डाले। (१३-४०,४१,४२)

स्वामी दयानंद सरस्वती के दाह संस्कार में जो सामग्री उपयोग में लाई गई वह इस प्रकार थी - घी ४ मन यानी १४६ कि.ग्रा., चंदन २ मन यानि ७५ कि.ग्रा., कपूर ५ सेर यानी ४.६७ कि.ग्रा., केसर १ सेर यानि ६३३ ग्राम, कस्तूरी २ तोला यानि २३.३२ ग्राम, लकड़ी १० मन यानि ३७३ कि.ग्रा. आदि। (आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित पुस्तक, ''महर्षि दयानंद का जीवन चरित्र'' से) उक्त सामग्री से सिद्ध होता है कि दाह संस्कार की क्रिया कितनी महंगी है। ग़रीब परिवार का कोई व्यक्ति इस क्रिया को निर्धारित सामग्री के साथ नहीं कर सकता। आज के भौतिकवादी दौर में उपरोक्त किसी भी सामग्री का शुद्ध और स्वच्छ मिलना भी न केवल मुश्किल बल्कि असंभव है। अतः दाह संस्कार की विधि निर्धारित नियमों व मानकों के आधार पर

करना अव्यावहारिक है। दाह संस्कार में मुर्दे के वजन के बराबर घी का सिद्धांत यानी किसी व्यक्ति के दाह संस्कार में ६-१० कनस्तर घी का इस्तेमाल क्या बेतुका-सा नहीं लगता?

यहाँ एक बात यह भी विचारणीय है कि हिंदू समाज में बच्चों, साधु-संन्यासियों को और कुछ वर्गों में आम व्यक्तियों को दफ़न किया जाता है। जब जलाना सर्वोत्तम है तो फिर सर्वोत्तम विधि से बच्चों और साधु-संतों का अंतिम संस्कार क्यों नहीं किया जाता? एक ऐतिहासिक तथ्य यह भी है कि आर्य अपने मुर्दों को दफ़न करते थे, जलाते न थे। माह सितम्बर २००५ में, मेरठ के सिनौली स्थान पर ५ प्राचीनकालीन शवधियाँ मिली थी, जिनमें मानव कंकाल सुरक्षित हालत में प्राप्त हुए थे। सभी शवधियाँ एक विशिष्ट दिक्स्थापन (सिर उत्तर दिशा में और पैर दक्षिण दिशा में) पैर सीधे और मुंह को बांयी बगल की ओर करके लिटाई गई थी। यह एक सबूत इस बात का है कि प्राचीन लोग भारत में अपने मुर्दों को दफ़न करते थे।

हिंदू धर्म-दर्शन की यह धारणा कि मनुष्य का शरीर पांच तत्वों से मिलकर बना है, मृत्योपरांत पंच तत्वों में विलीन किया जाना चाहिए। अगर इस धारणा को सही माना जाए तो वैज्ञानिक दृष्टिकोण से मृत्योपरांत दाह संस्कार की विधि मानव शरीर को पंच तत्वों में विलीन करने की उचित विधि नहीं है। पंच तत्वों में विलीन करने की उचित विधि केवल दफ़नाना ही है।

अग्नि द्वारा किए जाने वाले अंतिम संस्कार में अनेक रुढ़ियाँ व अनावश्यक अनुष्ठान होने के कारण यह क्रिया अत्यंत जटिल और लम्बी है। ये अनुष्ठान भी सार्वभौमिक नहीं है। अपने-अपने क्षेत्रीय, वर्गीय और जातीय रीति-रिवाज के अनुसार लोग अपने मुर्दों का दाह संस्कार करते हैं। अब तो हिंदू समाज में दाह संस्कार की नई-नई तकनीक आ गई हैं। रुपयों-पैसों की भाग-दौड़ में रिश्ते-नातों का महत्व कम हो गया है। लगता है हमारी मानवीय संवदेना मर सी गई है। अब घी, चंदन और केसर की जगह एल.पी.जी. (घरेलू गैस) और उच्च वोल्टेज की विद्युत शक्ति का प्रयोग होने लगा है। इन आधुनिक शवदाह गृहों में चंद मिनटों में काम तमाम। न घी, न चंदन, न कोई झंझट। क्या आधुनिक शवदाह गृह इस बात का खुला प्रमाण नहीं है कि हमने अपनी सुविधानुसार अपने संस्कारों और जीवन मूल्यों को बदला है।

मुर्दे को दफ़न करना एक सार्वभौमिक सत्य है। यह क्रिया सस्ती भी है, आसान भी है और उत्तम भी। साथ-साथ मानवीय मूल्यों के अनुकूल भी है। कब्र को मुर्दे के वहाँ पहुंचने से पहले तैयार कर लिया जाता है। मृत को कब्र में ऐसे लिटा दिया जाता है मानो सुलाकर कमरा बंद कर दिया हो। अब मृत के साथ जो हो रहा है वह कम से कम हमारी आंखों के सामने और स्वयं हमारे द्वारा तो नहीं किया जा रहा है। दफ़नाने में मानवीय मूल्यों का पूरा-पूरा लिहाज़ रखा जाता है। अब रही बात प्रदूषण की तो उचित रूप से दफ़नाए जाने पर वायु प्रदूषण शून्य प्रतिशत होगा। आज विज्ञान का युग है। शोध द्वारा भी हम यह जान सकते हैं कि जलाने और दफ़नाने में कौन-सी विधि प्रदूषण रहित, उत्तम, सस्ती और आसान है। स्वामी जी का यह तर्क कि मुर्दों को दफ़नाने में भूमि अधिक ख़राब होती है, कोई बौद्धिक और व्यावहारिक तर्क नहीं है। विश्व में ईसाई, यहूदी, मुसलमान, कम्युनिस्ट यानी क़रीब ८५ प्रतिशत लोग अपने मुर्दों को दफ़न करते हैं। पृथ्वी इतनी विशाल है कि मानव जाति कभी उसका पूर्ण प्रयोग न कर सकेगी। दफ़नाने की विधि आज भी ज्यों की ज्यों है जबकि जलाने की विधि बदलती जा रही है।

मृत व्यक्ति को जलाना इसलिए भी उचित नहीं है, क्योंकि अगर किसी व्यक्ति की जानबूझकर किसी षडयंत्र के तहत हत्या की गई है तो न्यायिक प्रक्रिया में हत्या के साधनों और कारणों को जानना अति आवश्यक है। हत्या के बाद मृत को तुरन्त जलाकर हत्या संबंधी सबूत छिप जाते हैं और अपराधी पर हत्या का केस कमजोर पड़ जाता है। आए दिन सुनने और पढ़ने में आता है कि बहू अथवा किसी अन्य को जलाकर, जहर देकर अथवा गला घोंटकर मार दिया जाता है और लाश को जलाकर अतिशीघ्र ठिकाने लगा दिया जाता है ताकि हत्या के साधनों को छिपाकर कानून से बचा जा सके। इससे न्यायिक प्रक्रिया भी प्रभावित होती है और मृत के संबंधियों को न्याय मिलने की सम्भावना भी कम रह जाती है। दफ़न करने की स्थिति में हत्या संबंधी जांच कई दिन बाद तक की जा सकती है।

स्वामी जी ने अपनी समीक्षा में जिस तथ्य पर अधिक ज़ोर दिया है वह यह है कि मुर्दे को गाड़ने से वायु प्रदूषित होती है, जलाने से वायु प्रदूषित नहीं होती। यह कितना अजीब और बचकाना तर्क है ? कोई बताए कि वह कौन-सा विज्ञान है जो कहता है कि जलाने

से वायू प्रदूषित नहीं होती ? मुर्दे को जलाने में जो कनस्तरों घी, केसर, कस्तूरी, चंदन आदि सामग्री के इस्तेमाल का उपदेश और आदेश स्वामी जी ने दिया जी का दूसरा तथ्य यह है कि मुर्दे को जलाने से उसके सब पदार्थ अणु बनकर वायु में उड़ जाते हैं। कोई बताए कि मुर्दे के अणु आसमान में उड़कर कहाँ चले जाते हैं ?

स्वामी जी ने अपनी समीक्षा में जो तीसरा तथ्य प्रस्तुत किया है वह यह है कि किसी से कोई कहे कि तुझको भूमि में गाड़ देवें तो यह सुनकर वह प्रसन्न कभी नहीं होता। (यहाँ यह स्पष्ट नहीं है कि उक्त बात मृत से कही जा रही है या जीवित से)। उक्त बात कितनी बेतुकी और हास्यास्पद है? क्या कोई यह कहने से खुश होता है कि आ तुझे जला दें? स्वामी जी का चौथा तथ्य यह है कि मुर्दे के मुंह, आंख और शरीर पर धूल, पत्थर, ईंट, चूना डालना, छाती पर पत्थर रखना कौन-सा प्रीति का काम है? कोई बताए कि मुर्दे की छाती पर कौन ईंट पत्थर रखता है? क्या स्वामी जी इतना भी नहीं जानते थे कि मृत व्यक्ति को दफ़न किस प्रकार किया जाता है। छाती पर लक्कड़ तो मृत व्यक्ति को जलाने में रखे जाते हैं न कि दफ़न करने में। किसी वेद विद्वान द्वारा क्या खूब बुद्धि और विवेक का इस्तेमाल किया गया है। स्वामी जी द्वारा पांचवी बात जो कही गई है वह यह कि मुर्दे को गाड़ने से बेहतर जंगल में छोड़ देना है। क्या यह बावलेपन की बात नहीं है? क्या उक्त बातों से यह सिद्ध नहीं होता कि हमें बस सच्चाई की ज़िद है। हमें हर हाल में सच्चाई का विरोध ही करना है, नतीजा कुछ भी हो। स्वामी जी ने छठी बात जो कही गई है कि कब्रों को देखने से भय भी होता है। कोई बताए कि मुर्दा किसी का क्या बिगाड़ सकता है?

ऐसा प्रतीत होता है कि किसी संदेशवाहक की पारलौकिक धारणा की ज़िद और विरोध में किसी समुदाय विशेष द्वारा जलाने के तरीके को अपनाया गया होगा। बाद में यह तरीका उस समुदाय की मान्यता और परंपरा बन गई होगी। दाह संस्कार धर्म विरूद्ध, विज्ञान विरूद्ध और मानवीय मूल्यों के ख़िलाफ़ है। अंत में मैं एक सवाल भी वेद विद्वानों से करूंगा कि कृपया वे बताएं कि 'मनुस्मृति' के रचयिता महर्षि मनु की लाश को उनके अनुयायियों द्वारा जलाया गया था या दफ़न किया गया था?

क़ुरआन पर आरोप : कितने स्तरीय ?

'सत्यार्थ प्रकाश' के संस्करण २००६ के पृष्ठ संख्या (ग) पर संपादक की भूमिका में लिखा है कि स्वामी जी ने यद्यपि १४ समुल्लास ही लिखवाए थे, मगर इसके प्रथम संस्करण में प्रकाशक राजा जयकृष्ण दास ने १२ समुल्लास ही प्रकाशित किए। प्रथम संस्करण में अंतिम दो समुल्लास प्रकाशित न करने का कारण स्वामी जी ने यह लिखा है कि 'सत्यार्थ प्रकाश' के प्रथम प्रकाशक राजा जी ब्रिटिश सरकार में डिप्टी कलेक्टर थे। उन दिनों भारत में ब्रिटिश सरकार का आतंक था। फलतः सरकार के मुलाजिम होने के नाते वे ईसाई सरकार को अप्रसन्न नहीं करना चाहते थे। दूसरा कारण यह लिखा है कि प्रकाशक की मुस्लिम नेताओं से व्यक्तिगत दोस्ती थी। अतः ईसाई मत और कुरआन मत का खंडन छपवाना उस समय उचित न समझा गया।

'सत्यार्थ प्रकाश' के द्वितीय संस्करण सन् १८८२ में १४ समुल्लास प्रकाशित किए गए। यहाँ सवाल यह पैदा होता है कि सन् १८८२ में न तो देश के हालात बदले और न ही हुकूमत बदली, फिर क्यों अंतिम दो समुल्लास जोड़े गए ? दूसरा सवाल यह कि प्रकाशक की व्यक्तिगत मज़बूरी के कारण एक ग्रंथ को आधा-अधूरा प्रकाशित करना औचित्यपूर्ण सा नहीं लगता। प्रकाशक बदला जा सकता था। पूरी क़ौम की नफ़रत और दुश्मनी में १०-२० मुस्लिम दोस्तों की दोस्ती क़ुरबान की जा सकती थी। 'सत्यार्थ प्रकाश' के द्वितीय संस्करण में १३वें और १४वें अध्यायों का प्रकाशन संदेहपूर्ण (Doubtful) है।

'सत्यार्थ प्रकाश' का १४वां समुल्लास कुरआन से संबंधित है। 'सत्यार्थ प्रकाश' के रचयिता ने इस समुल्लास में बार-बार यह आरोप लगाया है कि यह कुरआन किसी अल्पज्ञ और जंगली व्यक्ति का

बनाया हुआ है। खुदा के नाम से मुहम्मद साहब ने अपना मतलब सिद्ध करने के लिए यह कुरआन किसी कपटी–छली और महामूर्ख से बनवाया होगा। थोड़ी देर के लिए अगर यह बात मान भी ली जाए कि यह कुरआन किसी जंगली, अल्पज्ञ और महामूर्ख व्यक्ति (खुदा माफ करें) द्वारा बनाई हुई पुस्तक है तो यहाँ एक बड़ा सवाल यह पैदा होता है कि क्या कोई अल्पज्ञ और जंगली व्यक्ति इतनी शुद्ध भाषा में कोई पुस्तक लिख सकता है ? तथ्यों की बात बाद में करेंगे। इस पुस्तक में व्याकरण आदि की लेशमात्र भी ग़लती क्यों नहीं है ? आज तक इस पुस्तक में किसी भाषा संशोधन अथवा सुधार की आवश्यकता क्यों नहीं पड़ी? १४०० वर्षों की लम्बी अवधि में भी किसी अरबी भाषा के विद्वान और विशेषज्ञ ने इस पुस्तक में कोई ग़लती क्यों नहीं पकड़ी? इस पुस्तक का आज तक कोई प्रूफ संशोधन क्यों नहीं हुआ ? कुरआन की भाषा शैली विशुद्ध, अनूठी और अद्‌भुत है। क्या कोई निरक्षर व्यक्ति इतनी विशुद्ध, प्रवाहपूर्ण और अनूठी भाषा शैली का प्रयोग कर सकता है ? दूसरा सवाल यह है कि मुहम्मद साहब (सल्ल०) अपना ऐसा कौन–सा मतलब सिद्ध करना चाहते थे जिसके लिए आपको जंगली, अल्पज्ञ और छली–कपटी व्यक्तियों का सहयोग लेना पड़ा ? तीसरा सवाल यह है कि क्या कोई छली–कपटी और स्वार्थी व्यक्ति इतने उच्च्य नैतिक मूल्यों का प्रतिपादन और स्थापन कर सकता है जितने उच्च्य और उत्तम मूल्य कुरआन में प्रतिपादित किए गए हैं? उदाहरणार्थ कुछ अंशों को देखिए –

१. ''बेहयाई के क़रीब तक न जाओ चाहे वह ज़ाहिर हो या पोशीदा।'' (कुरआन ६–१५२)
२. ''निर्धनता के भय से अपनी औलाद का क़त्ल न करो।'' (कुरआन ६–१५२)
३. ''जब बात कहो, इंसाफ की कहो चाहे मामला अपने नातेदार ही का क्यों न हो।'' (कुरआन ६–१५३)
४. ''किसी मांगने वाले को मत झिड़को।'' (कुरआन ९३–१०)
५. ''बुराई का बदला भलाई से दो।'' (कुरआन ४१–३४)
६. ''भलाई में एक दूसरे से बढ़ जाने का प्रयास करो।'' (कुरआन ३–४८)
७. ''माँ–बाप को उफ तक न कहो और न उन्हें झिड़को।'' (कुरआन १७–२३)

८. ''जुआ, शराब, देवस्थान व पांसे गंदे शैतानी काम है इनसे अलग रहो।'' (कुरआन ५–९०)

चौथा सवाल यह है कि क्या कोई विद्याहीन और जंगली व्यक्ति रहस्य पूर्ण ब्रह्मांडीय सिद्धांतों का प्रतिपादन कर सकता है ? कुरआन में वर्णित अनेक भूगोलीय और खगोलीय तथ्य आज विज्ञान की कसौटी पर सत्य साबित होते जा रहे हैं जिन्हें उस वक्त कोई नहीं जानता था। अब क्या उक्त आरोप कि कुरआन किसी अल्पज्ञ और कपटी–छली द्वारा बनाया गया है, तर्कहीन और मूर्खतापूर्ण नहीं है ?

'सत्यार्थ प्रकाश' जो एक वेद विद्वान और संस्कृत के प्रकांड पंडित का लिखा हुआ बताया जाता है, इसके अब तक ३८ संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। कई बार वेद–विद्वानों और विशेषज्ञों की एक टीम द्वारा इसके प्रूफ शोधन का प्रयास किया गया, मगर आज तक इसकी भाषा और व्याकरण ही शुद्ध न हो सकी। क्या यह इस बात का प्रमाण नहीं है कि इस ग्रंथ के संपादको और अनुयायियों ने कभी इसे न गंभीरता से लिया है और न ही कोई खास महत्व ही दिया है। 'सत्यार्थ प्रकाश' का नवीनतम संस्करण जो सन् २००६ में प्रकाशित हुआ और जिसका संपादन पंडित भगवद्‌दत्त (रिसर्च स्कॉलर) ने किया। इस संस्करण को साढ़े तीन माह तक विद्वानों की एक टीम द्वारा प्रूफ शोधन के बाद प्रकाशित कराया गया। लिखा गया है कि इस बार सर्वशुद्ध 'सत्यार्थ प्रकाश' देने का प्रयास किया जा रहा है, मगर नतीजा 'ढाक के तीन पात' व्याकरण की अशुद्धियाँ आज तक भी शुद्ध नहीं हो पाई। भाषा व्याकरण तो क्या, उसमें वर्णित कुरआन की आयतों के नम्बर व तरतीब तक ग़लत है।

'सत्यार्थ प्रकाश' के रचयिता द्वारा १४वें समुल्लास में जितनी गंदी और घटिया भाषा का प्रयोग किया गया है, समीक्षा में तर्क और तथ्य भी उतने ही घटिया बचकाने और मूर्खता पूर्ण हैं। न कहीं गंभीर विचार है, न कोई युक्ति है और न तर्क। लगता है लेखक यह जानता ही न था कि तर्क क्या होता है ? तथाकथित विद्वान द्वारा कुरआन के तथ्यों के साथ जो खिलवाड़ किया गया है और बेधड़क होकर जिस तरह कीचड़ उछाली गई है, इससे प्रतीत होता है कि कथित लेखक दुराभाव के कारण अपनी अक़्ल ही खो बैठा था।

समीक्षा क्रम सं० ४३, ९९, ११२ में कथित लेखक ने लिखा है कि कुरआन का कर्ता न तो खगोल विद्या (Astronomy) जानता था

और न ही उसे भूगोल (Geography) की विद्या आती थी। लेखक ने लिखा है कि क्या सूरज और चाँद सदा घूमते हैं और पृथ्वी नहीं घूमती ? यदि कुरआन का बनाने वाला पृथ्वी का घूमना आदि जानता तो यह बात कभी न कहता कि पहाड़ों के धरने से पृथ्वी नहीं हिलती। इससे विदित होता है कि कुरआन के बनाने वाले को भूगोल-खगोल की विद्या नहीं थी।

'सत्यार्थ प्रकाश' के अष्टम समुल्लास में लिखा है कि सविता अर्थात वर्षा आदि का कर्ता अपनी परिधि (Axis) में घूमता है, किन्तु किसी लोक के चारों ओर (Orbit) नहीं घूमता। (प्रश्न क्रम सं० ७०)

स्वामी जी ने अपनी उक्त धारणा को सत्य साबित करने के लिए यजुर्वेद का एक मंत्र भी प्रस्तुत किया है।

''आ कृष्णेन रजसा वर्त्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च।
हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन्।।''
(क्रम सं० ७१)

जबकि कुरआन में लिखा है -

१. ''और सूर्य वह अपने ठिकाने की तरफ चला जा रहा है।''
"And the Sun runs onto a resting place" (36-38)

२. ''और वही है जिसने रात और दिन और सूरज और चांद बनाए। सब एक-एक मदार में तैर रहे हैं।
"It is who created the night and the day and the sun and the moon : all (the celestial bodies) swim along, each in its rounded orbits. (21-23)

कुरआन की उक्त आयतों से स्पष्ट है कि सभी आकाशीय पिंड (All Celestial Bodies) न केवल अपनी धुरी (Axis) पर घूम रहे हैं, बल्कि अपनी-अपनी कक्षा (Orbit) में भी चक्कर लगा रहे हैं। जिस प्रकार हमारी पृथ्वी की अपनी धुरी (Axis) पर औसत गति १६१० कि.मी. प्रति घंटा और अपनी कक्षा (Orbit) में औसत गति १०७१६० कि.मी. प्रति घंटा है, ठीक इसी प्रकार सूरज और चांद की गतियाँ हैं। हमारा सूर्य अपने परिवार और पड़ोसी तारों के साथ एक गोलाकार कक्षा (Orbit) में लगभग ६ लाख ६० हजार कि.मी. प्रति घंटा की अनुमानित गति से मंदाकिनी के केन्द्र के चारों ओर परिक्रमा कर रहा है, जबकि सूर्य को अपनी धुरी (Axis) पर एक पूर्ण चक्कर लगाने में २५.३८ दिन का समय लगता है। इन वैज्ञानिक तथ्यों में अब कोई

संदेह नहीं है, क्योंकि अब यह एक आंखों देखी सच्चाई है।

अब जहां तक पृथ्वी पर पहाड़ों के धरने (खूंटा गाड़ने) की बात है, हमारी पूरी पृथ्वी बिल्कुल एक जैसी नहीं है। यह कहीं से समतल है तो कहीं इस पर गहरे समुद्र हैं। दूसरी बात यह कि हमारी पृथ्वी अनेक परतों से बनी हुई है। अगर पृथ्वी पर गहरे समुद्र तो होते मगर ऊँचे-ऊँचे पहाड़ न होते तो पृथ्वी का संतुलन (Balance) कैसे कायम होता ? पृथ्वी अपनी अक्ष (Axis) और कक्षा (Orbit) में संतुलित और सुव्यवस्थित गति से कैसे घूमती ? अगर पहाड़ न होते तो पृथ्वी की परतें कैसे एक दूसरे से बंधी रहती ? इस तरह के तथ्य हमें वेद मंत्रों में भी मिलते हैं। उक्त प्रकार की आयतें विज्ञान विषय से संबंध रखती हैं। बिना शोध, अन्वेषण और जानकारी के उक्त प्रकार की आयतों की समीक्षा लिखना क्या बौद्धिक पागलपन को नहीं दर्शाता ?

जिस विद्वान ने कुरआन पर यह आरोप लगाया है कि कुरआन का कर्ता यह भी नहीं जानता की पृथ्वी घूमती है, उस तथाकथित विद्वान को कुरआन का कितना ज्ञान था ? इसके साथ तथाकथित विद्वान ने यह भी कहा है कि सूर्य किसी लोक के चारों ओर नहीं घूमता। 'सत्यार्थ प्रकाश' के कर्ता की यह बात भी झूठी साबित हो गई। अफ़सोस इस बात का है कि आरोपी ने आरोप भी इतनी ढीठता और दंभ के साथ लगाए हैं, मानो वह स्वयं पृथ्वी आदि का बनाने और घुमाने वाला हो।

चौदहवें समुल्लास के रचयिता ने लिखा है कि कुरआन की दृष्टि से सारे हिंदू काफ़िर हैं, क्योंकि वे कुरआन और पैग़म्बर को नहीं मानते। कुरआन की शिक्षा और आदेश यह है कि ''काफ़िरों का कत्ल करो।'' (समीक्षा क्रम सं० २) कोई बताए कि कुरआन का अवतरण किस देश में कब और किस प्रकार हुआ ? कुरआन में जब यह हुक्म दिया गया कि 'काफ़िरों को कत्ल करो' तब कुरआन और पैग़म्बर को मानने वाले कितने लोग थे ? क्या १०००-१५०० लोगों को ये हुक्म देना कि सारी दुनिया के लोग काफ़िर हैं, इन्हें जहां पाओ कत्ल करो, औचित्यपूर्ण और मुसलमानों के हित में था ? क्या १०००-१५०० आदमी सारी दुनिया के काफ़िरों को कत्ल कर सकते हैं ?

'सत्यार्थ प्रकाश' के लेखक ने मुसलमानों के लिए जंगली, अल्पज्ञ, विद्याहीन, म्लेच्छ, दुष्ट, धोखेबाज़, लड़ाईबाज़, गदर मचाने

वाले, अन्यायी, विषयी (Sexual) आदि अपमानजनक शब्दों का प्रयोग किया है।

क्या वेद और संस्कृत के विद्वान की यही पहचान है कि वह एक जाति और धर्म विशेष के लोगों को मर्यादाहीन शब्दों का प्रयोग करे ? वेद, मनुस्मृति और सत्यार्थ प्रकाश में अनार्य (मुसलमान आदि), दुष्ट और वेदनिंदकों के लिए क्या सजा है ? यह वेद विद्वान अवश्य जानते होंगे। अगर नहीं जानते तो आइए देखिए 'सत्यार्थ प्रकाश' में कहाँ क्या लिखा है?

१. ''आर्यों से भिन्न मनुष्यों का नाम दस्यु है।''
(समुल्लास-११, क्रम सं०-१),

२. ''दस्यु दुष्ट मनुष्य को कहते हैं।''
(स्वमंत व्यामन्तव्यप्रकाशः क्रम सं० २६)।

३. ''दुष्ट मनुष्य को मारने में हन्ता को कोई पाप नहीं लगता।''
(षष्ठ समु० मनु०-११)।

जब आर्यों से भिन्न सभी मनुष्य 'दुष्ट' हैं और उन्हें मारने में भी कोई पाप नहीं है तो फिर 'काफ़िर' शब्द को लेकर इतना बवाल क्यों ? जिस प्रकार वेद के न मानने वालों को नास्तिक कहा गया है, ठीक उसी प्रकार कुरआन के न मानने वालों को काफ़िर कहा गया है। यह कैसा चरित्र और कैसी नैतिकता है कि हमारी हर बात सही और दूसरों की सही भी ग़लत ? कुरआन में तो काफ़िर शब्द उन लोगों के लिए आया है कि जो हक़ के दुश्मन थे और साज़िशें कर रहे थे। कुरआन की प्रत्येक आयत अपना एक ख़ास संदर्भ रखती है। संदर्भ को समझे बिना हम किसी आयत का अर्थ और भावार्थ नहीं समझ सकते।

समीक्षा क्रम सं० १५६ में लिखा है कि ऊँटनी के लेख से यह अनुमान होता है कि अरब देश में ऊँट-ऊँटनी के सिवाय दूसरी सवारी कम होती है। इससे सिद्ध होता है कि किसी अरब देशीय ने कुरआन बनाया है। उक्त बात से पाठक ये अंदाज़ा बखूबी लगा सकते हैं कि जो आदमी कुरआन की समीक्षा लिखने बैठा है, उसका बौद्धिक स्तर कितना ऊँचा है ? वह यह भी नहीं जानता था कि कुरआन का अवतरण कब, कहाँ और किस प्रकार हुआ? उसने कुरआन में ऊँट शब्द पढ़कर अनुमान लगाया कि कुरआन किसी अरबी व्यक्ति द्वारा बनाया गया है।

समीक्षा क्रम सं० ३४ में लिखा है कि सुअर का निषेध, क्या मनुष्य का मांस खाना उचित है ? कितना बचकाना और बेतुका सवाल है ? कुरआन में नशे (शराब) का निषेध किया है। अब कोई यह सवाल करें कि कुरआन में जहर और तेज़ाब पीने का निषेध क्यों नहीं किया गया है ? तो क्या यह सवाल और आरोप मूर्खतापूर्ण नहीं होगा ? इस तरह तो एक पुस्तक खाने-पीने के विधि-निषेधों के लिए ही अपर्याप्त रहेगी। तात्कालिक समाज में जो बड़ी बुराइयाँ होती हैं, एक संदेशवाहक द्वारा उनकी ही निशानदेही की जाती है। आगे लिखा है कि मुर्दार हराम तो मारकर क्यों खाते हैं ? एक वेद विद्वान इतना भी नहीं जानता कि मुर्दार किसे कहते हैं ?

दिन में न खाना, रात को खाना सृष्टि क्रम के विपरीत है ? (समीक्षा क्रम सं० ३५)। यह भी कितना बचकाना आरोप है ? कोई बताए कि उक्त तथ्य में कितनी वैज्ञानिक सच्चाई है ? अक्सर लोग दिन छिपने के बाद ही खाना खाते हैं। समीक्षा क्रम सं० ५१ में लिखा है ''जिस समय ईसाई और मुसलमानों का मत चला था, उस समय उन देशों में जंगली और विद्याहीन मनुष्य अधिक थे इसलिए ऐसे विद्या विरूद्ध मत चल गए। अब विद्वान अधिक हैं, इसलिए आज ऐसा मत नहीं चल सकता। किन्तु जो-जो ऐसे पोकल मज़हब हैं वे भी अस्त होते जाते हैं। वृद्धि की तो कथा ही क्या है?'' क्या उक्त आरोप किसी बुद्धिमान और जानकार व्यक्ति का हो सकता है ? क्या वास्तव में ईसाई और मुसलमान मत खत्म होते जा रहे हैं ? कोई बताए विद्वानों का कौन-सा मत है जो आज फैलता जा रहा है ? जैसा कि लिखा है कि अब विद्वान अधिक हैं, कोई बताए कि सन् १८७५ में जब लेखक ने उक्त समीक्षा लिखी थी, कितने विद्वान थे ? स्वामी जी ने एक-एक कर सबकी ऐसी बखिया उधेड़ी है कि कोई भी बेदाग न छोड़ा। कोई मत ऐसा नहीं था जिसका लेखक ने खण्डन न किया हो।

समीक्षा क्रम सं० ५३ में लिखा है कि अल्लाह ने तीन हजार फरिश्तों से मुसलमानों की मदद की, तो अब मुसलमानों की बादशाही बहुत सी नष्ट हो गई है और होती जाती है, अब अल्लाह क्यों मदद नहीं करता ? वैसे तो कुरआन की उक्त आयत एक खास संदर्भ में कही गई है मगर क्या दुनिया से मुसलमानों की बादशाही नष्ट हो गई है या उस वक़्त से ज़्यादा है जब यह समीक्षा लिखी गई थी ? कोई यह भी तो बताए कि आरोप लगाने वालों की बादशाहत दुनिया में

कितनी और कहाँ-कहाँ है ? आगे कुछ बाते मैं संक्षेप में लिख रहा हूँ ताकि आलेख बहुत लम्बा न हो जाए।

समीक्षा क्रम सं० ६८ : ''क्या खुदा ऊपर रहता है ?'' क्या यह भी कोई आरोप है ? आरोपों का स्तर देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि आरोपी कोई विकृत मानसिकता का व्यक्ति था। क्या उक्त आरोप का भावार्थ यह नहीं है कि खुदा सबसे बड़ा और ऊपर है। समीक्षा क्रम सं० ६६ : क्या चांद, सूरज सदा फिरते हैं और पृथ्वी नहीं फिरती ? कुरआन में यह कहाँ लिखा है कि पृथ्वी नहीं घूमती ? समीक्षा क्रम सं० ६६ : और जो खुदा मेघ विद्या जानता तो आकाश से पानी उतारा लिखा पुनः यह क्यों लिखा कि पृथ्वी से पानी ऊपर चढ़ाया ? लगता है आरोप लगाने वाला व्यक्ति कोई ज़्यादा बड़ा वैज्ञानिक और पदार्थ विद्या का विशेषज्ञ है। कोई बताए इसमें क्या कुछ ग़लत लिखा है ? वर्षा का एक चक्र है जो घूमता रहता है।

समीक्षा क्रम सं० १०४ : ''प्रत्येक की गर्दन में कर्म पुस्तक। हम तो किसी एक की गर्दन में भी नहीं देखते ?'' कितना विद्वतापूर्ण आरोप है ? भला आत्मा कहीं दिखाई देती है ? शायद हम कर्मपत्र को मरने के बाद ही समझे। समीक्षा क्रम सं० १०५ : न्याय तो वेद और मनुस्मृति में देखो जिसमें क्षणमात्र भी विलम्ब नहीं होता और अपने-अपने कर्मानुसार दण्ड व प्रतिष्ठा सदा पाते रहते हैं। कोई बताए वह कौन-सी जगह है जहाँ हर क्षण न्याय हो रहा है? एक व्यक्ति अपनी पूरी ज़िंदगी लूट खसोट करता है, मगर यहाँ उसका कभी बाल-बांका नहीं होता। समीक्षा क्रम सं० १४२ : दूध की नहरे कभी हो सकती हैं? क्योंकि वह थोड़े समय में बिगड़ जाता है। भला जिसने इतना विशाल और अद्‌भुत ब्रह्मांड बनाया, क्या वह ऐसे दूध की नदियां नहीं बहा सकता जो कभी खराब न हो ? यहाँ दूध का मतलब गाय-भैंस का दूध नहीं है, बल्कि दूध जैसा पौष्टिक और स्वादिष्ट कोई पेय पदार्थ है जो पानी जैसा भी हो सकता है। समीक्षा क्रम सं० १२६ में मुहम्मद (सल्ल०) को विषयी (Sexual) और समीक्षा क्रम सं० १५२ में कुरआन को समलैंगिकता (Homosex) का मूल बताया है। क्या इतना झूठा और घटिया आरोप लगाकर कथित लेखक ने निकृष्ट मानसिकता का परिचय नहीं दिया है ?

अक्सर अखबार में कुछ इस तरह के शीर्षक लगाए जाते हैं। ''सोने की हो गई चांदी'', ''चांदी औंधे मुंह गिरी''। अगर कोई व्यक्ति

उक्त शब्दों का बिना भावार्थ समझे यह आरोप लगाने लगे कि सोने की चांदी कैसे हो सकती है ? चांदी के कोई मुंह होता है जो वह मुंह के बल गिर जाएगी ? तो आप अंदाज़ा लगा सकते हैं कि उक्त व्यक्ति में कितनी अक़्ल होगी। १४वें समुल्लास के कर्ता की अक़्ल उक्त व्यक्ति से ज़्यादा नहीं है। संदर्भ को बिना समझे केवल बाह्य शब्दों और अर्थों के आधार पर आरोप-प्रत्यारोप लगाना और तर्कों का जवाब कुतर्कों से देना कहाँ का पांडित्य और विद्वत्ता है ?

यहाँ यह भी विचारणीय है कि ''कुरआन ईश्वरीय पुस्तक नहीं है।'' यह साबित करने के लिए २००-४०० आरोपों की भला क्या जरूरत है ? इसके लिए तो केवल एक ही आरोप काफी है बशर्ते उसे ठोस सबूतों से साबित किया जाए। इतने ढेर सारे आरोप लगाकर तो कथित व्यक्ति ने अपने आपको निर्बुद्धि, कपटी और सिरफिरा ही साबित किया है। ऐसा व्यक्ति जो किसी पुस्तक की न मूल भाषा जानता हो और न ही उपभाषा और बिना किसी अध्ययन और चिंतन के समीक्षा लिखनी प्रारम्भ कर दे और समीक्षा भी उस भाषा में लिखे, जिस भाषा का उसे समुचित ज्ञान न हो। क्या यह मूर्खता और धूर्तता की पराकाष्ठा नहीं है ?

उक्त बातों से स्पष्ट है कि 'सत्यार्थ प्रकाश' के १४वें अध्याय की भाषा और तथ्य एक संन्यासी, वेद विद्वान, संस्कृत के प्रकांड पंडित के चरित्र से कोई मेल नहीं रखते। निकृष्ट और दंभ पूर्ण भाषा, मूर्खता पूर्ण और बचकाने तर्कों और तथ्यों का एक बाल ब्रह्मचारी, आचार्य और अध्यात्मवेत्ता के व्यक्तित्व और कृतित्व से भला क्या लेना-देना ? झूठ, कटु आलोचना, निंदा, गाली-गलौच, अमर्यादित और अहंकार पूर्ण भाषा, क्रोध, नफ़रत, पूर्वाग्रह आदि सब मनु द्वारा प्रतिपादित धर्म के १० लक्षणों और एक ब्रह्मचारी के चरित्र और आचरण के बिल्कुल विपरीत है। 'सत्यार्थ प्रकाश' के १४वें अध्याय को एक ब्रह्मचारी और वैदिक विद्वान से जोड़ना हिमाकत और धृष्टता है। रामकृष्ण मिशन के संस्थापक स्वामी विवेकानन्द (१८६३-१६०२) को भी कुरआन के तथ्यों पर आपत्ति थी, मगर उन्होंने तो कभी कुरआन और पैग़म्बर के ख़िलाफ़ आपत्तिजनक और अपमानजनक शब्दों का प्रयोग नहीं किया।

काफ़िर और नास्तिक

'सत्यार्थ प्रकाश' के कर्त्ता द्वारा हिंदू समाज में यह भ्रम और भ्रांति फैलाई गई कि कुरआन में काफ़िर शब्द हिंदुओं के लिए प्रयोग किया गया है और कुरआन में काफ़िरों के लिए आक्रामक और अपमानजनक घोषणाएं हैं। देश का एक विशिष्ट वर्ग कुरआन की कुछ आयतों को लेकर इसी प्रकार की आपत्ति करता है और कहता है कि इस्लाम न केवल अन्य धर्मों का अनादर करता है बल्कि जुल्म और अत्याचार को भी प्रोत्साहित करता है। कुरआन की कुछ आयतों को यहाँ उद्धृत किया जा रहा है जिन पर लोगों को आपत्ति है और जिन्हें 'सत्यार्थ प्रकाश' में अति अशिष्ट भाषा में आरोपित किया गया है।

१. ''काफ़िरों को अपना मित्र न बनाओ।'' (कुरआन ३-२८)
२. ''मुशरिक तो बस अपवित्र ही हैं।'' (कुरआन ९-२८)
३. ''मुशरिक को जहाँ पाओ क़त्ल करो।'' (कुरआन ९-५)
४. ''जब काफ़िरों से तुम्हारी मुठभेड़ हो तो पहला काम इनकी गर्दनें मारना है।'' (कुरआन ४७-४)

उपरोक्त आयतों को समझने के लिए हमें न केवल उस पृष्ठभूमि और उन परिस्थितियों को समझना पड़ेगा जिनमें ये आयतें अवतरित हुई हैं बल्कि हमें इस्लाम के उद्देश्य और मिशन को भी समझना होगा। केवल आयतें पढ़कर और सुनकर आरोप लगाना बुद्धिमत्ता नहीं है। इस्लाम शान्ति, एकता और समानता का आवाहक है। वह दुनिया में कुफ़्र (नास्तिकता) को सबसे बड़ा जुल्म, बिगाड़ और फ़साद का कारण समझता है, इसलिए इसे मिटाने और समूल नष्ट करने को प्राथमिकता देता है। यही इस्लाम का मूल उद्देश्य और मिशन है।

इस असीम और अद्भुत ब्रह्मांड का सृजन करने वाली सत्ता

सिर्फ़ एक है, वही एक मात्र व्यवस्थापक, नियामक, न्यायाध्यक्ष और उपास्यदेव है। उसको छोड़कर किसी अन्य शक्ति, सत्ता अथवा देवी-देवता को इष्ट और न्यायाध्यक्ष समझना कुफ़्र (नास्तिकता) है। मानव जीवन से जुड़ा यह एक ऐसा सत्य है कि इससे कोई अक़्ल का अंधा व्यक्ति ही इंकार कर सकता है और जो इस सत्य का इंकार करता है वह व्यक्ति अथवा समूह यक़ीनन नास्तिक (काफ़िर) है। कोई व्यक्ति या समुदाय अगर अपने पैदा करने वाले का ही इंकार कर दे, इससे बड़ा गुनाह और क्या हो सकता है ? इस्लाम मुख्यतः इसी सत्य का प्रतिपादन करता है। इसी सत्य का स्थापन ही इस्लाम का मुख्य उद्देश्य और मिशन है। वेद भी इसी सत्य का प्रतिपादन करते हैं।

इस्लाम की दृष्टि में उक्त सत्य का इंकार और विरोध एक नाक़ाबिल-ए-माफ़ी गुनाह है। मृत्योपरांत इस गुनाह-ए-अज़ीम का अंज़ाम अति भयानक व रोंगटे खड़े कर देने वाला है। मानव जाति के अंतिम चरण में सम्पूर्ण मानवता को इस भयानक अंज़ाम से बचाने के लिए यह उत्तरदायित्व इस्लाम के अंतिम संदेशवाहक हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) पर डाला गया। आपने इस्लाम की शिक्षा और सिद्धांतों को अत्यंत शान्तिमय तरीके से लोगों तक पहुंचाना प्रारम्भ कर दिया। आपका संबंध अरब क़ौम से था जो एक बर्बर व असभ्य क़ौम थी। आपके पैग़ाम को लोगों ने सुना। पैग़ाम को सुनकर कुछ लोग आपके क़रीब आते गए। कुछ लोग आपके दुश्मन बन गए। आपके दुश्मनों ने आप व आपके साथियों को परेशान करना, अपमानित करना, मज़ाक उड़ाना, सख़्त बर्ताव, ईर्ष्या, द्वेष, गाली-गलौच करना प्रारम्भ कर दिया। आपने फिर भी शान्तिमय तरीके से अपना पैग़ाम सुनाने और फैलाने का क्रम जारी रखा। आपके समकालीन लोगों ने आपके मिशन के बढ़ते प्रचार और प्रसार को देखकर आप व आपके साथियों को सताना व यातनाएं देनी प्रारम्भ कर दी। आपका बहिष्कार किया गया। भूखा-प्यासा रहने पर विवश किया गया। आप ताइफ़ चले गए ताकि वहाँ के लोगों को अपना संदेश सुनाकर अपना समर्थक बनाए, मगर वहाँ भी आपके साथ अमानुषिक व्यवहार किया गया। पत्थर मार-मार कर आपको लहूलुहान कर दिया। आप फिर ताइफ़ से मक्का वापस आ गए। इस्लाम विरोधियों ने आपकी हत्या करने की योजनाएं बनाई। एक बार यहूदियों में से एक गिरोह ने आप व आपके ख़ास-ख़ास साथियों के खिलाफ़ एक गुप्त षडयंत्र रचा कि आपको खाने की दावत

पर बुलाकर अचानक आप पर जानलेवा हमला कर देंगे, मगर ठीक समय पर अल्लाह की कृपा से आपको इस षडयंत्र का पता चल गया और आप दावत पर नहीं गए। एक बार कुरैशियों ने आपको मार डालने की साज़िश के तहत रात के समय आपके घर को चारों तरफ़ से घेर लिया मगर अल्लाह की कृपा से इस्लाम विरोधियों की यह साजिश भी नाकाम हो गई। आप मक्का छोड़कर मदीना चले गए, मगर इस्लाम के कट्टर दुश्मनों ने वहाँ भी आपका पीछा नहीं छोड़ा। जो लोग आपकी शिक्षाओं को समझकर आपके साथ आना चाहते थे, उनको रोकने के लिए उन पर असहनीय जुल्मों-सितम ढाए गए। आपके ख़िलाफ भ्रम और भ्रांतियाँ फैलाई गई। जो समझौते और संधियां की गई, उनकी शर्तों को तोड़ा गया। आपको धोखा देने के लिए मुशरिकों और मुनाफ़िक़ों ने मस्जिद के नाम से एक षडयंत्र का अड्डा बनाया। आपको काबा की ज़ियारत से रोका गया, मगर फिर भी आपकी तरफ से कोई विरोधात्मक कार्यवाही नहीं की गई।

आरम्भिक काल में इस्लाम स्वीकार करने वालों के ऐतिहासिक क़िस्से पढ़ने पर पता चलता है कि उन बेक़सूर स्त्रियों व पुरुषों पर अमानुषिक जुल्मों-सितम को सुनकर कौन-सा दिल होगा जो न रो पड़ेगा। धधकते कोयलों, तपती बालू पर नंगे कर लिटाना, शरीर के अंगों को काट-काट कर निर्ममता व निर्दयता से हत्या करना, जुल्मों-सितम करने में अपने सगे- संबंधियों की परवाह न करना, भ्रम व भ्रांतियाँ फैलाकर लोगों को सही रास्ते की तरफ आने से रोकना आदि बातों की जब अति हो गई तब विषम व विकट परिस्थितियों में विवशता वश प्रतिशोधात्मक नहीं बल्कि आत्मरक्षा के लिए उन षडयंत्रकारियों के साथ अल्लाह की तरफ़ से लड़ाई का आदेश अवतरित हुआ। कुरआन के कुछ अंश यहाँ उद्धृत किए जाते हैं-

१. ''बहुत बुरी करतूत थी जो ये करते रहे। किसी ईमान वाले के मामले में न ये किसी नाते-रिश्ते की परवाह करते हैं और न किसी समझौते के दायित्व की, और ज़्यादती सदैव इन्हीं की ओर से हुई है।'' (कुरआन ९-१०)

२. ''यदि प्रतिज्ञा के पश्चात् ये फिर अपनी क़समों को तोड़ डालें और तुम्हारे धर्म पर आक्रमण करना प्रारम्भ कर दें तो अधर्म के ध्वजावाहकों से युद्ध करो क्योंकि उनकी क़समों का कोई विश्वास नहीं।'' (कुरआन ९-१२)

३. ''क्या तुम न लड़ोगे ऐसे लोगों से जो अपनी प्रतिज्ञा भंग करते हैं और उन्होंने रसूल को देश से निकाल देने का निश्चय किया था, ज़्यादती का आरम्भ करने वाले वही थे।'' (कुरआन ९-१३)

यहाँ यह विचारणीय है कि क्या तार्किकता और बौद्धिकता का मुकाबला गाली-गलौच, पत्थर और तलवार से करने को न्यायसंगत कहा जा सकता है? क्या किसी व्यक्ति अथवा गिरोह को महज इस कारण जुल्मों-सितम का निशाना बनाना कि वह हक को जानकर उसे क़बूल कर रहा है, तर्कसंगत कहा जा सकता है ? क्या किसी व्यक्ति अथवा गिरोह का विरोध इस वजह से करना कि वह लोगों को बुराई से रोकता है, भलाई की तरफ बुलाता है, बुद्धि सम्मत कहा जा सकता है ?

आप (सल्ल०) की लगभग २३ वर्ष की नबूवत की अवधि में मात्र १०१८ लोग मारे गए जिनमें २५९ आप के पक्ष के व ७५९ विरोधी पक्ष के थे। जबकि विश्व में जितनी बड़ी क्रांतियाँ हुई हैं, उनमें मरने वालों की संख्या इतनी अधिक है कि उनके मुकाबले इस्लामी क्रांति को रक्तहीन क्रांति ही कहा जाएगा। यह भी विचारणीय है कि जिस व्यक्ति ने अविद्यान्धकार में डूबी ज़ालिम व बर्बर क़ौम को समता, न्याय, एकता, नैतिकता व शिष्टता का पाठ पढ़ाया हो, उसकी उद्दंडता, कुचरित्रता, अस्वच्छता को समाप्त कर एक उच्च कोटि की सभ्यता विकसित की हो, उस व्यक्ति के मिशन पर ये आरोप कि वह अनुदार व असहिष्णु तत्ववाद का प्रतिनिधित्व करता है, यह एक दुराग्रह से ग्रसित और इस्लाम की सतही व सरसरी जानकारी रखने वाले व्यक्ति का आरोप तो हो सकता है मगर जिन लोगों ने कुरआन व उसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का गहनता, गंभीरता व निष्पक्षता से अध्ययन किया है वे इस्लाम पर इतना घिनौना आरोप कभी न लगाएंगे। कुरआन का निष्कपटता के साथ अध्ययन व चिंतन किए बिना उसकी शिक्षाओं पर आरोप-प्रत्यारोप करना न केवल सांप्रदायिक विद्वेष उत्पन्न करेगा, बल्कि नैतिक अपराध भी होगा।

इस्लाम का स्वभाव सुधारात्मक व प्रचारात्मक है प्रतिशोधात्मक व घृणात्मक नहीं है। इस्लाम प्रेम व भाईचारे की बुनियादों पर जीवन का निर्माण करता है मगर शोषित व पीड़ित की सहायता व अन्याय व असत्य की उदद्ंडता के लिए तलवार उठाने को जायज़ ही नहीं अनिवार्य समझता है। कुरआन की निम्नलिखित आयतों पर भी एक दृष्टि डालिए।

१. ''बुराई का बदला भलाई से दो, तुम देखोगे कि जिसे तुम से दुश्मनी थी, वह भी तुम्हारा गहरा दोस्त हो जाएगा।''

(कुरआन, ४१-३४)

२. ''किसी जीव की नाहक़ हत्या न करो।'' (कुरआन, ६-१५१)

३. ''किसी व्यक्ति को किसी खून का बदला लेने या धरती में फ़साद फैलाने के अतिरिक्त किसी और कारण से मार डाला तो मानों उसने सारे ही मनुष्यों की हत्या कर डाली और जिसने उसे जीवन प्रदान किया उसने मानों सारे मनुष्यों को जीवनदान दिया।''

(कुरआन, ५-३२)

४. ''किसी संप्रदाय विशेष की शत्रुता तुम्हारे लिए इस बात का कारण न बन जाए कि तुम न्याय न करो।'' (कुरआन, ५-८)

५. ''जो तुम पर जुल्म करें तुम उसे माफ कर दो।'' (हदीस)

उपर्युक्त तथ्यों और विश्लेषण से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि कुरआन में जिन लोगों के लिए काफ़िर, ज़ालिम, मुशरिक, मुनाफ़िक़ आदि शब्द प्रयोग किए हैं, ये अत्यंत घृणित प्रवृत्ति के लोग थे, जिनके दिलों में कपट व नीयतों में खोट था। जिन्होंने अपने आचरण से ये बात साबित कर दी थी कि वे वास्तव में झूठे, फ़रेबी, धोखेबाज़, दग़ाबाज़ व गद्दार हैं। ये वे लोग थे जो अपनी झूठी मान बड़ाई की ख़ातिर सत्य, सज्जनता व तर्क का मुकाबला झूठ, फरेब व तलवार से कर रहे थे। घिनौने षडयंत्र रच-रच कर इस्लाम के अनुयायियों पर जुल्मों-ज़्यादती कर रहे थे। इन्हें न रिश्तों-नातों का कोई लिहाज़ था, न अपनी क़समों की कोई परवाह। ये शब्द किसी जाति, रंग व नस्ल के लिए नहीं बोले गए हैं। ये सभी शब्द गुणवाचक हैं जो आपके समकालीन कुछ खास निकृष्ट प्रवृत्ति के लोगों के लिए प्रयोग किए गए हैं।

निःसंदेह विश्व में कुछ मुस्लिम तत्व आतंक की कार्यवाही में लिप्त हैं। एक ख़ास मानसिकता के वे तत्व जिहाद के नाम पर निर्दोष लोगों का खून बहा रहे हैं। कहने को वे मुस्लिम हैं, मगर वास्तव में वे इस्लाम के सच्चे अनुयायी नहीं हैं। इस्लाम तो सौहार्द और सहिष्णुता का प्रतिनिधित्व करता है, मगर तथाकथित तत्वों ने इस्लाम की उदारवादी छवि को अत्यंत नुकसान पहुंचाया है। इस्लाम जिस सहिष्णुता की मांग करता है, आज उसमें अत्यंत गिरावट देखने में आ रही है जो अत्यंत ही दुःखद और दुर्भाग्यपूर्ण है। विश्व का जनमानस

इस्लाम और मुस्लिम समुदाय को जिस घृणित दृष्टि से देख रहा है इसके लिए इस्लाम की शिक्षा नहीं बल्कि मुस्लिम समुदाय दोषी और उत्तरदायी है।

अब जहां तक हिंदू समुदाय का सवाल है, विराट हिंदू समुदाय में उन लोगों की संख्या नगण्य है, जो वेदों को अपनी एक मात्र धार्मिक पुस्तक मानते हैं। यहां यह विचारणीय है कि यदि सम्पूर्ण समाज वेदों को अपनी एक मात्र धार्मिक पुस्तक मान ले तो फिर उनके लिए रामायण और गीता व्यर्थ और अस्वीकार्य हो जाएगी, क्योंकि वेदों और रामायण व गीता की धारणाएं एक दूसरे के विपरीत और विरोधी हैं। आर्यसमाजी धारा के लोग जो वेदों को अपनी एक मात्र धार्मिक पुस्तक मानते हैं, उनमें उन लोगों की संख्या नगण्य है, जिन्हें वेदों का समुचित ज्ञान है। दयानंदीय आस्था धारा के लोगों ने चूंकि 'सत्यार्थ प्रकाश' को वेदों की कुंजी मान लिया है, इसलिए वे वेदों के मूल को पढ़ने की ज़रूरत ही नहीं समझते। विडंबना तो यह है कि उन्हें वेदों का तो क्या, 'सत्यार्थ प्रकाश' का भी समुचित ज्ञान नहीं है।

वेद और मनुस्मृति में भी काफ़िर के समानार्थी शब्द के रूप में नास्तिक, म्लेच्छ, दस्यु आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है। जो आक्रामक घोषणाएं कुरआन में काफ़िरों के लिए की गई हैं, वैसी ही घोषणाएं वेद और मनुस्मृति में वेद-निंदकों और नास्तिकों के लिए की गई हैं। कहीं-कहीं तो ऐसी घोषणाएं भी की गई हैं, जिन्हें किसी भी आधार पर न्यायोचित और तर्क संगत नहीं ठहराया जा सकता। आइए कुछ उदाहरण देखते हैं :

'सत्यार्थ प्रकाश' में स्वामी जी स्पष्ट शब्दों में लिखते हैं -

''म्लेच्छवाचश्चार्यवाचः सर्वे ते दस्यवः स्मृताः।।''

(मनु०, १०-४५)

''म्लेच्छ देश स्त्वतः परः।

(मनु०, २-२५)

भावार्थ - जो आर्यावर्त्त देश से भिन्न देश हैं वे दस्यु (दुष्ट) और म्लेच्छ देश कहलाते हैं। (८-६२)

जहां कुरआन में काफ़िर, मुशरिक़, ज़ालिम आदि शब्द गुणवाचक हैं वहीं उक्त में दस्यु और म्लेच्छ ,शब्दों को स्थानवाचक के रूप में प्रयोग किया गया है अर्थात् एक देश विशेष के अलावा अन्य देश के सभी मुनष्य चाहे वो सत्कर्मी और सदाचारी ही क्यों न हों, दस्यु और

म्लेच्छ हैं। क्या उक्त घोषणा न्यायसंगत है ? आस्था और सद्गुण के स्थान पर भौगोलिक क्षेत्र और जन्मभूमि को अच्छे-बुरे का आधार बनाना कौन-सी ईश्वरीय व्यवस्था है ?

आगे लिखा है - हम सृष्टि विषय में कह आए हैं कि ''आर्य नाम उत्तम पुरुषों का है और आर्यों से भिन्न मनुष्यों का नाम दस्यु है।'' (११-१)

''जैसे 'आर्य' श्रेष्ठ और 'दस्यु' दुष्ट मनुष्यों को कहते हैं वैसे ही मैं भी मानता हूं।'' (स्वमन्त०-२६)

अब जैसा कि उपरोक्त से स्पष्ट है कि सभी अनार्य चाहे वो उत्तम गुणों से युक्त हों 'दुष्ट' हैं। दुष्टों के लिए मनुस्मृति में क्या सजा लिखी है, उसे भी देखिए।

''नाततापिवधे दोषो हन्तुर्भवति कश्चन
प्रकाशं वाऽप्रकाशं वा मन्युस्तन्मन्युमृच्छति।''
(मनु०, ८-३५०)

भावार्थ - ''दुष्ट पुरुषों को मारने में हन्ता को पाप नहीं होता, चाहे प्रसिद्ध मारे चाहे अप्रसिद्ध, क्योंकि क्रोधी को क्रोध से मारना जानो क्रोध से क्रोध की लड़ाई है।''

''योऽवमन्येत ते मूले हेतुशास्त्राश्रयाद् द्विजः।
स साधुभिर्बहिष्कार्यो नास्तिको वेद निन्दकः।।''
(मनु० २-११)

भावार्थ - ''जो वेद और वेदानुकूल आप्त पुरुषों के लिए शास्त्रों का अपमान करता है उस वेद निंदक, नास्तिक को जाति, पंक्ति और देश से बाह्य कर देना चाहिए।''

''उपरुध्यारिमासीत राष्ट्रं चास्योपपीडयेत्
दूषयेच्चास्य सततं यवसान्नोदकेन्धनम्।।''
(मनु०, ७-१६५)

भावार्थ - ''किसी समय उचित समझे तो शत्रु को चारों ओर से घेरकर रोके रखें और इसके राज्य को पीड़ित कर शत्रु के चारा, अन्न, जल और इंधन को नष्ट और दूषित कर दें।''

''अव ब्रह्मद्विषो जहि।''
(अथर्ववेद, २०-६३-१)

भावार्थ -''वेद-द्वेषियों को नष्ट कर दे।''

''एवा त्वं देव्यध्न्य ब्रह्मज्यस्य कृतागसो देव पीयोररा धसः।।

वज्रेण शतपर्वणा तीक्ष्णेन क्षुरभृष्टिना।।
प्र स्कन्धान् प्र शिरो जहि।।
लोकमान्यस्य सं छिन्धि त्वचमस्य वि वेष्टय।।
मांसान्यस्य शातय स्नावान्यस्य सं वृह।।
अस्थीन्यस्य पीडय मज्जानमस्य निर्जहि।।
सर्वास्यागंन पर्वाणि वि श्रथय।।
(अथर्ववेद, १२-५-६५, ७१)

भावार्थ - ''हे देवी ! (उत्तम गुणवाली), हे अवध्य (न मारने योग्य प्रबल वेदवाणी) ! तू इसी प्रकार ब्रह्मचारियों के हानिकारक, अपराध करने वाले विद्वानों के सताने वाले, अदानशील पुरुष के (६५) सैकड़ों जोड़वाले, तीक्ष्ण छुरे की-सी धार वाले वज्र से (६६) कंधों और शिर को तोड़-फोड़ दें (६७) उस (वेद विरोधी) के लोमों को काट डाल, उसकी खाल उतार ले (६८) उसके मांस के टुकड़ों को बोटी-बोटी कर दे, उसकी नसों को ऐंठ दे (६६) उसकी हड्डियां मसल डाल, उसकी मींग (निर्जहि) निकाल दे (७०) उसके सब अंगों और जोड़ों को ढीला कर दे (७१)

ऋग्वेद में अनेक स्थानों पर 'दस्यु' शब्द का प्रयोग हुआ है। वेद विद्वानों ने 'दस्यु' शब्द का अर्थ अनार्य, दुष्ट, शत्रु, प्रतिद्वंद्वी और यज्ञादि न करने वाले पतित लोग लिया है। ऋग्वेद में अनेक ऐसे मंत्र हैं जिनमें दस्युओं का नाश करने और मारने के लिए प्रार्थना की गई है।

''सनत्क्षेत्रं सखिभिः श्वित्न्येभिः सनत्सूर्य सनदपः सुवज्र।
(ऋग्वेद, १-१००-१८)

भावार्थ - 'हे पुरुहूत, बहुत बार बुलाए गए इंद्र, अपने स्वभावानुसार दस्युओं और शिम्युओं को पृथ्वी पर पटक कर वज्र द्वारा कुचल डालो।''

''यों नो दास आर्यो वा पुरुष्टुतादेव इन्द्र युधये चिकेतति।
अस्माभिष्टे सुषहाः सन्तु शत्रवस्त्वया वयं तान्वनुयाम सङ्.गमे।।''
(ऋग्वेद, १०-३८-३)

भावार्थ : ''हे विद्वान वा राजन्! यदि उत्तम कर्म रहित दस्यु कर्मा मनुष्य ! अथवा श्रेष्ठ बलशाली मनुष्य और राक्षसी वृत्ति वाला मनुष्य हमें युद्ध के लिए ललकारे तो ये सभी शत्रु हमारे द्वारा परास्त होवें। आपके सहाय से रण में हम उन्हें मार भगायें।''

''अकर्मा दस्युरभि नो अमन्तुरन्यव्रतो अमानुषः
त्वं तस्या मित्रहन्वधर्दासस्य दम्भय।''
(ऋग्वेद, १०-२२-८)

भावार्थ - हे काम आदि शत्रुओं का नाश करने वाले भगवन् ! जो उत्तम कार्यों को नहीं करने वाले, वेद विहित कर्मों के क्षय करने वाले, राक्षसी प्रवृत्ति के मनुष्य आप हन्ता होकर उनको विनष्ट करें।''

''सहवांसी दस्युनव्रतम।।
(ऋग्वेद, ६-४१-२)

''परमात्मा वेद धर्म को नहीं पालन करने वाले दुराचारियों का शमन करने वाला है।''

''देवास आयन्परशूँरबिभ्रन्वना वृश्चन्तो अभि विड्भिरायन्।
नि सुद्रवं दधतो वक्षरासु यत्रा कृपीटमनु तद्दहन्ति।''
(ऋग्वेद, १०-२८-८)

भावार्थ - ''शक्तिशाली लोग आगे बढ़ें, हथियारों को धारण करें, जंगलों को काटते हुए और रास्ते में नदी पड़े तो उसके वेग को रोकते हुए पानी के वेग का अनुसरण करते हुए शत्रु सैन्य को दग्ध करें।''

'सत्यार्थ प्रकाश' के दशम समुल्लास में स्वामी जी लिखते हैं -

''कभी नास्तिक, लम्पट, विश्वासघाती, मिथ्यावादी, स्वार्थी, कपटी, छली, आदि दुष्ट मनुष्यों का संग न करें।'' (१०-६)

अगर कोई व्यक्ति उक्त विषय वस्तु को पढ़कर केवल बाहृय शब्दों और अर्थों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाल ले कि इसमें तो जैन, बौद्ध, सिख, यहूदी, ईसाई, मुसलमान आदि विधर्मियों के लिए आक्रामक और अपमानजनक घोषणाएं हैं तो क्या इसे न्यायसंगत माना जाएगा?

संदर्भ, पृष्ठभूमि और परिस्थितियों से अनभिज्ञ, बिना किसी विवेक, अध्ययन और अन्वेषण के केवल शब्दों और वाक्यों के बाहृय अर्थों को आधार बनाकर एक तरफा और मनोनुकूल अर्थ निरूपण करना बौद्धिक और तार्किक जीवन की नितांत दुर्भाग्यपूर्ण और दुःखद स्थिति है। यह स्थिति और भी चिंताजनक हो जाती है जब आरोपों का विषय किसी समुदाय की आस्थाओं से जुड़ा हो। आरोपों में अगर दंभ और दुराग्रह हो तब तो स्थिति अत्यंत ही गंभीर और भयावह हो जाती है।

ऐसे आपत्तिकर्ताओं के लिए 'सत्यार्थ प्रकाश' में स्वामी जी ने

लिखा है -

''बहुत से हठी, दुराग्रही मनुष्य होते हैं कि जो वक्ता के अभिप्राय से विरूद्ध कल्पना किया करते हैं, विशेषकर मत वाले लोग। क्योंकि मत के आग्रह से उनकी बुद्धि अंधकार में फंस कर नष्ट हो जाती है।'' (भूमिका-१६)

कुछ ऐसा ही व्यवहार कुरआन के साथ कथित लेखकों और आलोचकों द्वारा किया गया है। कुरआन की आयतों की जो आलोचना विरोधी मत वालों के द्वारा की गई है उसमें न विवेक नज़र आता है और न कहीं गंभीरता नज़र आती है। उसमें केवल आग्रह और दुराग्रह है जो विवेकपूर्ण जीवन के लिए अत्यंत ही दुर्भाग्यपूर्ण है। यह भी बौद्धिक जीवन की एक विडंबना ही है कि जो आरोप खुद हम पर बनते हैं वही आरोप हम दूसरों पर लगाए।

क्या पर्दा नारी के हित में नहीं है ?

महर्षि दयानंद सरस्वती स्त्रियों में पर्दे की प्रथा के विरोधी थे। प्रश्नोत्तर के दौरान किसी ने स्वामी जी से सवाल किया कि ''भारत के लोग स्त्रियों को, इस प्रयोजन से कि वे व्यभिचारिणी न हों, पर्दे में रखते हैं और ईसाई अपनी स्त्रियों को पर्दे में नहीं रखते और स्थान-स्थान पर भ्रमण कराते हैं। इतना होने पर भी भारत की स्त्रियां ईसाई स्त्रियों से अधिक व्यभिचारिणी दिखाई देती हैं, इसका क्या कारण है ?'' जवाब में स्वामी जी ने कहा, ''स्त्रियों को पर्दे में रखना आजन्म कारागार में डालना है। जब उनको विद्या होगी वह स्वयं अपनी विद्या के द्वारा बुद्धिमती होकर प्रत्येक प्रकार के दोषों से रहित और पवित्र रह सकती हैं। पर्दे में रहने से सतीत्व रक्षा नहीं कर सकती और बिना विद्या प्राप्ति के बुद्धिमती नहीं हो सकती है और पर्दे में रखने की प्रथा इस प्रकार प्रचलित हुई कि जब इस देश के शासक मुसलमान हुए तो उन्होंने शासन की शक्ति से जिस किसी की बहू-बेटी को अच्छी रूपवती देखा उसको अपने शासनाधिकार से बलात् छीन लिया और दासी बना लिया। उस समय हिंदू विवश थे, इस कारण उनमें सामना करने की सामर्थ्य न थी। इसलिए अपने सम्मान की रक्षा के लिए उन्होंने अपनी स्त्रियों और बहू-बेटियों को घर से बाहर जाने का निषेध कर दिया। सो मूर्खों ने उसको पूर्वजों का आचार समझ लिया। देखों, मेमों अर्थात् अंग्रेज़ों की स्त्रियों को, वे भारत की स्त्रियों की अपेक्षा कितनी साहसी, विद्यावती और सदाचारिणी होती हैं।'' (पंडित लेखराम कृत ''महर्षि दयानंद सरस्वती का जीवन चरित्र'' नामक पुस्तक से)।

कितना बचकाना और मूर्खतापूर्ण आरोप है जो स्वामी दयानंद सरस्वती ने मुस्लिम शासकों पर लगाया है। यह भी इतिहास का इतना

ही बड़ा झूठ है जितना यह कि इस्लाम तलवार के जोर से फैला। अगर मुस्लिम शासक इतने जोरावर, बर्बर, असभ्य और जंगली थे कि न उन्हें किसी का ख़ौफ़ था, न उनमें कोई नैतिकता थी और न ही अपने मान-सम्मान की रत्ती भर परवाह थी, फिर भला चादर अर्थात् कपड़े का एक मामूली सा टुकड़ा उनके लिए कौन-सी ताकत या रूकावट थी, जिससे डरकर उन्होंने अपनी बर्बरता छोड़ दी। दूसरी बात यह कि क्या हिंदू वास्तव में इतना विवश, कमजोर और फुसफुसिया था कि उनमें बहुसंख्यक होकर भी विरोध की ताकत नहीं थी ? तीसरी बात यह कि क्या इतने घटिया और निकृष्ट चरित्र के लोग बहुसंख्यक समुदाय पर औलाद दर औलाद आजीवन हुकूमत कर सकते हैं ? कैसी अजीब और मूर्खतापूर्ण बात कही गई है कि पर्दे में रहने से सतीत्व रक्षा नहीं होती और ईसाई स्त्रियां पर्दे में नहीं रहती, फिर भी सदाचारिणी होती हैं। लगता है स्वामी जी को यूरोपीय देशों में स्त्रियों की तात्कालिक हालत की जानकारी ही नहीं थी, बस यूं ही अपनी विद्वत्ता के तीर चलाए हैं। पता नहीं सवालकर्ता भी किस बौद्धिक स्तर के थे कि उन्होंने स्वामी जी की बातों को बिना किसी हील-हुज्जत और ननु-नच किए सत्य मान लिया।

मुसलमानों से दुराग्रह और द्वेष के कारण भारतीय चिंतकों की मानसिकता भी कुछ इसी तरह की बनती चली गई, उन्होंने कहना शुरू किया कि पर्दा भारतीय संस्कृति नहीं है, बल्कि यह एक मध्यकालीन रूढ़िवादी परंपरा है। बिना तथ्य और प्रमाणों के यह बात भी प्रचारित की गई कि पर्दा मुस्लिम आक्रांताओं की देन है। यह एक इस्लामी उद्घोष है। कुछ विचारकों और समाज सुधारकों का तो यह भी कहना है कि पर्दा जिहालत की निशानी है। पर्दा नारी जाति पर जुल्म है। पर्दा विश्व की आर्थिक तरक्क़ी में बाधक है।

जैसा कि स्पष्ट है कि पर्दा एक इस्लामी अवधारणा है। मुस्लिम औरतें अक्सर बुर्का अथवा चादर ओढ़कर घर से बाहर निकलती हैं। स्वामी दयानंद क्योंकि इस्लाम और मुसलमानों के कट्टर आलोचक और विरोधी थे, इसलिए पर्दे का भला वे क्यों समर्थन करते ? इनके बाद तथाकथित मानसिकता के लोगों ने अपना कुत्सित प्रयोजन सिद्ध करने हेतु पर्दे और बुर्के को विश्व स्तर पर अपनी आलोचना और विरोध का विषय बनाया है। दुनिया भर में प्रोपगैंडा किया गया कि बुर्का अन्याय और शोषण का प्रतीक है।

क्या वास्तव में पर्दा भारतीय और ईसाई संस्कृति नहीं है ? क्या वास्तव में पर्दा नारी के हित में नहीं है ? जो लोग नारी के लिए पर्दे का विरोध करते हैं, उन्हें शायद इतनी समझ नहीं है कि बेपर्दगी का अंजाम क्या होता है ? अक्सर देखने में आता है कि पर्दे का वही लोग विरोध करते हैं जो गंदी मानसिकता के और इस्लाम और मुसलमानों से दुराग्रह और द्वेष रखते हैं। अभी गत दिनों बुर्का विश्व मीडिया में बहस का मुख्य मुद्दा रहा है। आलोचना तथ्यपरक और युक्ति-युक्त होनी चाहिए थी, मगर विश्व स्तर से बुर्के के ख़िलाफ़ जो बातें कहीं गई हैं वह अत्यंत ही घटिया और बचकानी थी। पूर्व ब्रिटिश विदेश मंत्री जैकस्ट्रा ने कहा कि, ''बुर्का संवाद में बाधक है।'' किसी ने बुर्के को अन्याय का प्रतीक बनाया तो किसी ने कहा, ''बुर्का आपत्तिजनक पोशाक है।'' पर्दे को आपत्तिजनक और नंगेपन को उत्तम, शिष्ट और प्रगति का प्रतीक समझा जा रहा है। क्या उक्त सभी कथन गलत धारणा, सतही सोच व गंदी मानसिकता के द्योतक नहीं हैं ?

दैनिक जागरण के स्तम्भकार एस. शंकर लिखते हैं, ''जब नदी में तैरने जैसे निजी काम बुर्के में नहीं हो सकते तो फिर सार्वजनिक कार्य की बात ही अलग है।'' यहां मानो लेखक महोदय समझाना चाह रहे हो कि जब बुर्का पहनकर औरत नदी में नहीं तैर सकती, तो वह बुर्का पहन कर पैदल, बस अथवा रेल आदि में सफर कैसे कर सकती है ? कम्प्यूटर कैसे चला सकती है। देखो कितना व्यावहारिक और वजनी तर्क है ? क्या बुर्के के विरोध में इससे अधिक मूर्खतापूर्ण और हास्यास्पद बात और हो सकती है ? लेखक ने अपने आलेख में इस्लाम और पर्दा विरोधी बांग्ला लेखिका तसलीमा नसरीन को भी अपना कुत्सित प्रयोजन सिद्ध करने हेतु हथियार के रूप में प्रयोग किया है। मैं लेखक महोदय से पूछना चाहता हूं कि तसलीमा नसरीन के इस तथ्य पर उनका क्या ख़याल है जो तसलीमा नसरीन ने प्रकृति व पुरुष तंत्र को गाली देते हुए लिखा है कि, ''प्रसव पीड़ा केवल नारी को झेलनी पड़ती है, जबकि पुरुष स्वच्छंद विचरता है।''

आधुनिक नारी चिंतक एस. शंकर अपने आलेख में लिखते हैं कि, ''इस्लामी देशों की महिलाएं अपने-अपने देशों में तरह-तरह की इस्लामी पाबंदियों में चलने की तुलना में यूरोपीय देशों की खुली सड़कों पर अधिक सुरक्षित और स्वच्छंद महसूस करती है।'' वे आगे लिखते हैं, ''नक़ाब या बुर्के जैसी पोशाक मानवीय समानता के विपरीत है।''

क्या यह एक अस्वाभाविक और क़तई बेतुकी बात नहीं है कि महिला घर की अपेक्षा खुली सड़कों पर अपने आपको अधिक सुरक्षित महसूस करें ? क्या यह बावलेपन की बात नहीं है कि नग्नता और खुली सड़कें महिलाओं के लिए कपड़ों और घर की अपेक्षा अधिक सुरक्षित, आरामदायक और जायकेदार होती हैं ? क्या पहनावा ही मानवीय समानता का मुख्य आधार है ?

एक आर्यसमाजी बुजुर्ग अधिवक्ता ने मुझे व्यक्तिगत रूप से लिखा है कि ''बुर्क़ा एक ज़ालिमाना जबर है, जिसमें औरत को सिर से पैर तक इस प्रकार जकड़ दिया जाता है कि प्रकृति प्रदत्त हवा, रोशनी, शीतलता, गर्मी तक का अनुभव न कर सके। घुटकर मर भी जाए तो जन्नत। पैर की ऐड़ी भी दिखाई पड़ जाए तो भी कोड़े। यह औरत की इस्लामी गुलामी का प्रतीक है।'' उन्होंने डा. अंबेडकर के शब्दों में लिखा है, ''बुर्का संसार की भयानक चीजों में से एक है।''

उक्त कथन से ऐसा प्रतीत होता है कि अधिवक्ता महोदय ने बुर्का कभी देखा नहीं है या फिर एक संप्रदाय विशेष से ईर्ष्या और द्वेष ने उन्हें निपट अंधा बना दिया है। क्या कोई आदमी ऐसा है जो यह न जानता हो कि बुर्का किस पदार्थ (Material) का बना होता है ? क्या कोई औरत बुर्के में घुटकर मर सकती है? बुर्के के ख़िलाफ़ इसी तरह की बयानबाजी करना अक़्ल का दिवालियापन अथवा धृष्टता नहीं तो और क्या है ? दुनिया जानती है कि बुर्का प्लास्टिक अथवा स्टील आदि का बना नहीं होता, कपड़े का बना होता है, फिर भी इस तरह की बातें करना आख़िर क्या प्रदर्शित करता है ?

उपर्युक्त कथनों से सिद्ध होता है कि दुराग्रह आदमी को निपट अंधा और बहरा बना देता है। क्या उक्त तथाकथित चिंतक दुराग्रह से ग्रसित नज़र नहीं आते ? यहां असल मामला व मसला पर्दे या बुर्के का नहीं है, बल्कि इस्लाम के ख़िलाफ़ प्रोपगैंडे का है। कैसी अजीब विडंबना है कि आधुनिक मानवतावादियों को पर्दे में तो बुराई और अज्ञानता नज़र आती है, मगर समलैंगिकता और स्वच्छंद यौन संबंधों में कोई बुराई नज़र नहीं आती? यहां मैं पूछना चाहता हूँ तथाकथित आधुनिकवादियों से कि आख़िर बुर्के से समाज में कौन-सी बुराई व समस्या उत्पन्न हो रही है? आख़िर बुर्का वैज्ञानिक व आर्थिक प्रगति में कौन सी बाधा उत्पन्न कर रहा है? अगर औरत चादर या दुपट्टा ओढ़कर घर से बाहर निकलती है तो इसमें शर्म, बुराई और असभ्यता की कौन-सी बात है ? बुर्के में

सुविधा और आसानी यह है कि इसे पहनकर औरत के दोनों हाथ फ्री रहते हैं, जबकि चादर आदि को दोनों हाथों से ओढ़ना-लपेटना और पकड़ना पड़ता है। बुर्का कोई धार्मिक लिबास नहीं है यह औरतों की सुविधा और आसानी के लिए बनाया गया है। आवश्यकता के अनुसार बुर्के में मुंह खोला जा सकता है। वैदिक युग में स्त्रियों के लिए तीन प्रकार के संज्ञक वस्त्रों का उल्लेख मिलता है : नीवि (अंतर्वस्त्र), वायस् (अधोवस्त्र) तथा अधिवासस् (उत्तरीय वस्त्र)। उत्तरीय वस्त्र चादर या ओढ़नी को कहते हैं। पर्दे के विरोध का दुराग्रह के अतिरिक्त मुझे अन्य कोई उचित कारण नज़र नहीं आता है।

जिस दौर में एक बाप अपनी बेटी को अर्द्धनग्न नाचते देखकर खुश होता हो, जहाँ अप्राकृतिक सेक्स और फ्री सेक्स को कानूनी दर्जा दिया जा चुका हो, जहाँ नग्नता घंटों के हिसाब से करोड़ों में बिकती हो, जहाँ अश्लीलता इलेक्ट्रॉनिक मीडिया का मुख्य कारोबारी धंधा हो, जहाँ अर्द्धनग्नता सभ्य समाज का मानदंड हो, जहाँ कपड़ों को नारी जाति की तरक़्क़ी में बाधक समझा जाता हो, जहाँ सब कुछ भुलाकर केवल शारीरिक सुख भोग ही जीवन का लक्ष्य हो, क्या वहाँ पर्दे व बुर्के का पुरज़ोर विरोध करने वालों को विद्वान, सभ्य और नारी जाति का हितैषी नहीं समझा जाएगा? क्या वहाँ बुर्का पहनने वाली औरतों को अनपढ़, फूहड़ और बेशर्म नहीं समझा जाएगा? क्या वहाँ पर्दे का समर्थन करने वालों को रूढ़िवादी, कट्टरपंथी, स्त्री स्वातंत्र्य का विरोधी और परले दर्जे का बेवक़ूफ़ नहीं समझा जाएगा ?

कैसा अजीब ज़माना आ गया है, नग्नता को सराहा जा रहा है। नग्नता के साथ इतनी उदारता और सहानुभूति बरती जा रही है, गोया कि वह कोई मानवीय संवेदनाओं से जुड़ा मामला हो। नंगेपन को प्रोत्साहित करने के लिए विश्व स्तर पर सौन्दर्य प्रतियोगिताओं, चुंबन प्रतियोगिताओं और नग्न नृत्यों आदि का आयोजन किया जा रहा है। प्रतियोगिताओं के विजेताओं को बड़ी-बड़ी रकमों से पुरस्कृत किया जा रहा है। कुल मिलाकर नंगेपन को इतना राजनीतिक और नैतिक समर्थन दिया जा रहा है कि औरतों में नंगा होने का शौक पैदा हो गया है। कल तक जिस नारी के लिए पर्दा, दुपट्टा और सिर पर आंचल उसकी मान-मर्यादा और प्रतिष्ठा का मानदंड हुआ करता था, आज वह नारी पर्दा और दुपट्टा तो क्या अंतर्वस्त्र तक उतारने को आमादा हो गई है।

कल तक पुरुष जिस नारी को अधम और दोयम मानकर शोषण कर रहा था, आज उस नारी का शोषण बराबरी का दर्जा देने के नाम पर

किया जा रहा है। कल तक जिस नारी का शोषण धर्म की आड़ में होता था, आज उसका शोषण सहानुभूति की आड़ में किया जा रहा है। कल तक नारी केवल भोग की वस्तु थी, आज वह मल्टी-उपयोग की वस्तु बन गई है। आज नारी सजावट की, स्वागत की, नुमाइश की, मनोरंजन की और मीडिया की वस्तु बन गई है। माल बेचने के लिए नारी की नग्न देह का धड़ल्ले से इस्तेमाल किया जा रहा है। बेपर्दगी का अंजाम यही होना था। आश्चर्य इस बात का है कि नारी को नंगा करके न केवल पुरुष तंत्र खुश है, बल्कि नारी भी अपनी इस अभूतपूर्व कामयाबी पर फूले नहीं समा रही है।

यत्र नार्यस्तु पूज्यंते ...... का क्या यही गूढ़ार्थ है कि सारे जमाने के सामने नारी को नंगा करके नचाया जाए ? नारी शराब खानों में शराबियों की मेहमान नवाज़ी करे ? घर-गृहस्थी के साथ नारी पर आर्थिक ज़िम्मेदारी का बोझ भी लाद दिया जाए ? यहाँ यह भी विचारणीय है कि क्या नारी सशक्तिकरण के नारे से नारी वास्तव में सशक्त हुई है? क्या नारी के साथ होने वाले उत्पीड़नों और शोषणों में कमी आई है ? क्या नारी को पुरुष के बराबर मानने से नारी की फ़ितरत बदल जाती है ? क्या नारीत्व का आदर्श यही है कि नारी बेपर्दा होकर घर से बाहर निकले ? अक़्ल के अंधे नारी शुभचिंतकों ने नारी के भोलेपन और कमज़ोरी का फ़ायदा उठाकर उसकी फ़ितरत को बदलने की कोशिश की, जिसका नतीजा यह हुआ कि आज नारी अपने स्वरूप को भूला बैठी। वह न तो नारी रह पाई और न ही पुरुष बन सकी।

आज की नारी स्कर्ट, मिनीस्कर्ट, बिकनी, ब्रा, बनियान, जींस आदि पहनकर अपने आपको आधुनिक और सभ्य समझ रही है। ऐसे-ऐसे कपड़े डिजाइन किए जा रहे हैं, जिन्हें पहनकर भी नारी नंगी नज़र आए। आज एक ऐसा निर्लज्ज समाज विकसित हो चुका है, जहाँ न बहन की कोई शर्म है और न बेटी की। आज हम उस मंजिल पर आ गए हैं जहाँ चादर और दुपट्टा तो वैज्ञानिक तरक्क़ी की भेंट चढ़ चुका है। आज तो रोना यह है कि नारी पूरे कपड़े पहन कर घर से बाहर क्यों नहीं निकलती ? आने वाले कल में शायद यह कहा जाएगा कि नारी अंतर्वस्त्र पहनकर घर से बाहर क्यों नहीं निकलती। बीते कल में हमने दुपट्टे को रुढ़िवादी परंपरा और नारी जाति पर ज़ुल्म बताया। आने वाले कल में शायद हम यह कहेंगे कि नारी को अंतर्वस्त्र पहनने के लिए बाध्य करना नारी की व्यक्तिगत स्वतंत्रता का हनन है। कोई सिरफिरा

व्यक्ति अगर उक्त का विरोध करेगा तो उसे नारी जाति का कट्टर दुश्मन समझा जाएगा। इसके लिए ज़मीन तैयार हो गई है। आज विश्व में नारी और पुरुष के बीच सेक्स और होमोसेक्स विषय पर खुला (Open) तर्क-वितर्क (Debate) और विचार-विमर्श (Discussion) आरम्भ हो चुका है। नंगे नृत्य तो बहुत पहले से प्रारम्भ हो चुके हैं, अब तो विश्व में कुछ ऐसे उदाहरण भी देखने में आ रहे हैं कि स्त्रियाँ सामूहिक रूप से नंगा होने का रिकार्ड बना रही हैं।

आज सभ्य समाज की सारी हदें टूट चुकी हैं। नाचती, गाती, नंगी तहज़ीब ने नारी को बराबरी का दर्जा देने की कोशिश ने उसके मान-सम्मान को इतना गिरा दिया कि आज वह बाजार की वस्तु बन गई है। पश्चिमी सभ्यता ने आर्थिक स्वतंत्रता और समानता के दिलफ़रेब और खुशनुमा नारों के जरिए न केवल नारी का बाज़ारीकरण किया, बल्कि उसकी ज़हनियत को इतना पस्त कर दिया कि आज वह लुटपिट कर भी खुश है। नारी की ज़हनी पस्ती का अंदाजा इस बात से आसानी से लगाया जा सकता है कि आज वह अपने लिए पर्दे को, जो उसकी मर्यादा और शालीनता का संरक्षक है, जुल्म व नाइंसाफी समझ बैठी। नंगेपन को मुक्ति और आज़ादी समझ बैठी। ज़्यादती को हमदर्दी और दुर्दशा को तरक्क़ी समझ बैठी। घर के मुकाबले सड़क को, ऑफिस को, फैक्ट्री को सुकून की जगह समझ बैठी। दो साल पहले भारत सरकार ने नारी को कारखानों और फैक्ट्रियों में रात की शिफ्ट में काम करने की इजाज़त देने का फैसला किया। क्या यह फैसला नारी के हक़ में था ?

पश्चिमी सभ्यता ने ज़िंदगी का एक ऐसा नक्शा बनाया जिससे परिवार और समाज का सारा ढांचा उलट-पलट हो गया। इतनी बेशुमार ख़राबियाँ पैदा हो गई जिनको गिनना आसान नहीं है। प्रकृति की ख़िलाफ़वर्जी का नतीजा हमेशा भयानक होता है। नारी को हर मोड़ पर पुरुष के साथ खड़ा कर देने का अंजाम यह हुआ कि बेहयाई और नंगेपन के साथ-साथ स्वच्छंद सेक्स संबंधों का सैलाब उमड़ पड़ा। नारी को घर से बाहर निकालकर पुरुष के साथ कदम से कदम और कंधे से कंधा मिलाकर चलने फिरने ने उन्हें अनैतिक और अप्राकृतिक सेक्स संबंधा बनाने पर मजबूर किया। नतीजा हम सब के सामने है।

नारी और पुरुष दोनों में जैविक (Biological) अंतर है। इसलिए दोनों के लिए पहनावे की मर्यादाएं अलग-अलग हैं। नारी को

पुरुष के मुकाबले अधिक कपड़े पहनने चाहिए ताकि उसके शरीर के उभार और बनावट दिखाई न दें। यही नैतिक और सामाजिक दृष्टि से उचित और उत्तम है। मगर आज जो हो रहा है वह ठीक उक्त के विपरीत है। अगर हम नारी और पुरुष दोनों को नैसर्गिक दृष्टि से समान भी मान लें, फिर भी नारी को पुरुष के समान पूरे कपड़े पहनने चाहिए। आज नारी पुरुष से अधिक और बराबर तो क्या ठीक-ठाक कपड़े पहनने को राज़ी ही नहीं है। यह कैसी समानता है कि टी.वी. स्क्रीन पर, अखबार में, पत्रिका में, फिल्मों में पुरुष का पूरा शरीर वस्त्रों से ढका होता है जबकि स्त्री अर्द्धनग्न देखी जा सकती है।

२० जनवरी २००९ को शपथ समारोह के दौरान वाशिंगटन में आयोजित एक कार्यक्रम में नवनिर्वाचित अमेरिकी राष्ट्रपति बराक हुसैन ओबामा ने अपनी पत्नी मिशेल ओबामा के साथ और उपराष्ट्रपति जो बिडेल ने अपनी पत्नी जिल बिडेल के साथ डांस किया। कार्यक्रम में दोनों शिखर पुरुष पूर्ण लिबास में थे, जबकि दोनों की पत्नियाँ अर्द्धनग्न अवस्था में थी। यह एक उदाहरण मात्र है वरना दुनिया में जो कुछ हो रहा है, वह किसी से छिपा नहीं है।

नारी का पहनावा कैसा होना चाहिए? इस विषय पर हम किसी धर्म-दर्शन की बात न करके केवल मानवीय मूल्यों और सामाजिक व्यवस्था की बात करें तो क्या जिस प्रकार की सभ्यता और संस्कृति आज विकसित हो रही है उसे उचित और सभ्य कहा जा सकता है ? क्या नारी को पुरुष से भी कम कपड़े पहनने चाहिए ? क्या ऐसे परिधानों को उचित और सभ्य कहा जाएगा, जिनमें नारी शरीर के प्रत्येक अंगों का उभार स्पष्ट दिखाई दे? वस्त्र ऐसे होने चाहिए जिनमें शरीर पूरा ढक जाए, जो प्रत्येक मौसमों की ज़रूरतों को पूरा कर सके, अधिक तंग न हो कि परपुरुष को अपनी ओर आकर्षित और आमंत्रित करें, शालीनता का परिचायक हो न कि फूहड़ता का। मगर आज ऐसे बेढंगे परिधान डिजाइन किए जा रहे हैं जिनका उद्देश्य ही यह है कि नारी कपड़े पहनकर भी नंगी नज़र आए। शराब और नग्नता ये दो बिगाड़ के सबसे बड़े कारक हैं। आज ये दोनों प्रत्येक समारोह का अनिवार्य अंग बन गए हैं। क्या यही है मानवीय सभ्यता का उत्कर्ष ? क्या आर्थिक और वैज्ञानिक उन्नति का यही अर्थ है कि हम अपने मूलभूत जीवन मूल्यों और मर्यादाओं को त्याग दें ?

यह कैसा ब्रह्मचर्य था ?

'सत्यार्थ प्रकाश' के निर्माता आचार्य स्वामी दयानंद सरस्वती बाल ब्रह्मचारी और संन्यासी थे। स्वामी जी ने ब्रह्मचर्याश्रम से ही सीधे संन्यास ग्रहण किया था। स्वामी जी ने लिखा है-

ब्रह्माचर्य्याश्रमं समाप्य गृही भवेत् गृही भूत्वा वनी भवेद्वनी भूत्वा प्रव्रजेत्।।

-(शत० कां० १४)

मनुष्यों को उचित है कि ब्रह्मचर्य्याश्रम को समाप्त करके गृहस्थ होकर वानप्रस्थ और वानप्रस्थ होकर संन्यासी होवें अर्थात् यह अनुक्रम से होकर आश्रम का विधान है। (५-१)

किसी ने स्वामी जी से सवाल किया -

प्रश्न - गृहाश्रम सब से छोटा होता है या बड़ा ?

उत्तर- अपने-अपने कर्त्तव्य कर्मों में सब बड़े है, परन्तु -

यथा नदीनदाः सर्वे सागरे यान्ति संस्थितिम् ।
तथैवाश्रमिणः सर्वे गृहस्थे यान्ति संस्थितिम् ।।१।।

-(मनु,०६-९०)

यथा वायुं समाश्रित्य वर्त्तन्ते सर्वजन्तवः।
तथा गृहस्थामाश्रित वर्त्तन्ते सर्व आश्रमाः।।२।।
यस्मात्त्रयोऽप्याश्रमिणो दानेनान्नेन चान्वहम्।
गृहस्थेनैव धार्य्यन्ते तस्माज्ज्येष्ठाश्रमो गृही।।३।।
स संधार्य्यः प्रयत्नेन स्वर्गमक्षयमिच्छता।
सुखं चेहेच्छता नित्यं योऽधार्यो दुर्बलेन्द्रियैः।।४।।

-(मनु,०३-७७, ७८, ७९)

जैसे नदी और बड़े-बड़े नद तब तक भ्रमते ही रहते हैं जब तक समुद्र को प्राप्त नहीं होते, वैसे गृहस्थ ही के आश्रय से सब आश्रम स्थिर रहते हैं। बिना इस आश्रम के किसी आश्रम को कोई व्यवहार सिद्ध नहीं होता।।१।। जिससे ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और संन्यासी

तीन आश्रमों को दान और अन्नादि देके प्रतिदिन गृहस्थ ही धारण करता है इससे गृहस्थ ज्येष्ठाश्रम है, अर्थात सब व्यवहारों में धुरन्धर कहाता है।।२।। इसलिए जो मोक्ष और संसार के सुख की इच्छा करता। हो वह प्रयत्न से गृहाश्रम का धारण करे।।३।। जो गृहाश्रम दुर्बलेन्द्रिय अर्थात् भीरू और निर्बल पुरूषों से धारण करने अयोग्य है उसको अच्छे प्रकार धारण करे।।४।।

इसलिए जितना कुछ व्यवहार संसार में है उसका आधार गृहाश्रम है। जो यह गृहाश्रम न होता तो सन्तानोत्पत्ति के न होने से ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और संन्यासाश्रम कहाँ से हो सकते ? जो कोई गृहाश्रम की निन्दा करता है वह निन्दनीय है। और जो प्रंशसा करता है वही प्रशंसनीय है, परन्तु तभी गृहाश्रम में सुख होता है जब स्त्री और पुरूष दोनों परस्पर प्रसन्न, विद्वान, पुरूषार्थी और सब प्रकार के व्यवहारों के ज्ञाता हों। इसलिए गृहाश्रम के सुख का मुख्य कारण ब्रह्मचर्य और पूर्वोक्त स्वयंवर विवाह है। (४-१५२, १५३)

स्वामी जी से उक्त से संबंधित एक सवाल यह भी किया-

प्रश्न- गृहाश्रम और वानप्रस्थाश्रम न करके संन्यासाश्रम करे उसको पाप होता है या नहीं?

उत्तर - होता है और नहीं भी होता।

प्रश्न- यह दो प्रकार की बात क्यों कहते हो?

उत्तर- दो प्रकार की नहीं, क्योंकि जो बाल्यावस्था में विरक्त होकर विषयों में फंसे वह महापापी और जो न फंसे वह महापुण्यात्मा सत्पुरूष है। आगे लिखा है- जो पूर्ण विद्वान, जितेन्द्रिय, विषय भोग की कामना से रहित, परोपकार करने की इच्छा से युक्त पुरूष हो, वह ब्रह्मचर्याश्रम ही से संन्यास लेवे। (५-७,८,९)

कहने का मतलब स्पष्ट है कि स्वामी जी पूर्ण विद्वान, जितेन्द्रिय विषयभोग की कामना से रहित, महापुण्यात्मा सत्पुरूष थे, क्योंकि उन्होंने ब्रह्मचर्याश्रम से ही सीधे संन्यास ग्रहण किया था।

एक ब्रह्मचारी और संयासी के जीवन का शास्त्रीय आदर्श है कि उसे काम, क्रोध, अहंकार, मोह, भय, शोक, ईर्ष्या, निंदा, कपट, कुटिलता, अश्लीलता आदि अवगुणों से सदैव दूर रहना चाहिए। मगर 'सत्यार्थ प्रकाश' में अहंकार, निंदा, अश्लीलता के अलावा कुछ और दिखाई नहीं पड़ता। स्वामी दयानंद ने अपने महान ग्रंथ में जैन तीर्थंकर स्वामी महावीर, महात्मा गौतम बुद्ध, ईसा मसीह, हज़रत मुहम्मद, गुरू नानक सिंह आदि

किसी भी महापुरूष और उनसे संबंधित संप्रदाय को नहीं बख्शा, जिसकी निंदा और अमर्यादित आलोचना न की हो। स्वामी जी ने स्वयं के अलावा किसी अन्य को विद्वान और पुण्यात्मा नहीं समझा।

स्वामी दयानंद किस व्यक्ति को अपना आदर्श मानते थे, उन्होंने कहीं उसके नाम का उल्लेख तक नहीं किया है। संपादक महोदय पं० भगवद्दत्त लिखते हैं, ''ऋषि दयानन्द सरस्वती प्राचीन ऋषि-मुनियों के उत्कृष्टतम प्रतिनिधि थे। उन्होंने भारत को एक धक्का दिया था, सोई हुई आर्य जाति को पकड़ कर हिलोरे दे-देकर जगाया था। इस काम में ऐसा समर्थ पुरूष गत पाँच सहस्र वर्ष में इस भारत भूमि पर नहीं जन्मा।'' (संपादक की भूमिका)

आधुनिक भारत के उक्त निर्माता आचार्य ने विभिन्न मत-मतान्तरों और उनके प्रवर्तकों के विषय में क्या टीका-टिप्पणी की है ज़रा उस पर भी एक नज़र डाल लीजिए-

.... इससे यह सिद्ध होता है कि सबसे वैर, विरोध, निन्दा, ईर्ष्या आदि दुष्ट कर्मरूप सागर में डुबाने वाला जैनमार्ग है। जैसे जैनी लोग सबके निन्दक हैं वैसे कोई भी दूसरा मत वाला महानिन्दक और अधर्मी न होगा। क्या एक ओर से सबकी निन्दा और अपनी अतिप्रशंसा करना शठ मनुष्यों की बातें नहीं हैं?विवेकी लोग तो चाहे किसी के मत के हों उनमें अच्छे को अच्छा और बुरे को बुरा कहते हैं। (१२-१०५)

.... भला! जो कुछ भी ईसा में विद्या होती तो ऐसी अटाटूट, जंगलीपन की बात क्यों कह देता?तथापि 'यत्र देशे द्रुमो नास्ति तत्रैरण्डोऽपि द्रुमायते।' जिस देश में कोई भी वृक्ष न हो तो उस देश में एरण्ड का वृक्ष ही सबसे बड़ा और अच्छा गिना जाता है वैसे महाजंगली देश में ईसा का भी होना ठीक था, पर आजकल ईसा की क्या गणना हो सकती है। (१३-७७)

.... अब सुनिए! ईसाइयों के स्वर्ग में विवाह भी होते हैं, क्योंकि ईसा का विवाह ईश्वर ने वहीं किया। पूछना चाहिए कि उसके श्वसुर, सासू, शालादि कौन थे और लड़के-बाले कितने हुए?और वीर्य के नाश होने से बल, बुद्धि, पराक्रम, आयु आदि के भी न्यून होने से अब तक ईसा ने वहाँ शरीर त्याग किया होगा। (१३-१४५)

प्रहलाद को उसका पिता पढ़ने के लिए भेजता था; क्या बुरा काम किया था? और वह प्रहलाद ऐसा मूर्ख पढ़ना छोड़ वैरागी होना

चाहता था। जो जलते हुए खम्भे से कीड़ी चढ़ने लगी और प्रहलाद स्पर्श करने से न जला इस बात को जो सच्ची माने उसको भी खम्भे के साथ लगा देना चाहिए। जो यह न जले तो जानो वह भी न जला होगा और नृसिंह भी क्यों न जला? (११-१८२)

.... वाह कुरान का खुदा और पैग़म्बर तथा कुरान को! जिसको दूसरे का मतलब नष्ट कर अपना मतलब सिद्ध करना इष्ट हो ऐसी लीला अवश्य रचता है। इससे यह भी सिद्ध हुआ कि मुहम्मद साहेब बड़े विषयी थे। यदि न होते तो (लेपालक) बेटे की स्त्री को जो पुत्र की स्त्री थी; अपनी स्त्री क्यों कर लेते? और फिर ऐसी बातें करने वाले का खुदा भी पक्षपाती बना और अन्याय को न्याय ठहराया। मनुष्यों में जो जंगली भी होगा वह भी बेटे की स्त्री को छोड़ता है और यह कितनी बड़ी अन्याय की बात है कि नबी को विषयासक्ति की लीला करने में कुछ भी अटकाव नहीं होना! यदि नबी किसी का बाप न था तो जैद (लेपालक) बेटा किसका था?और क्यों लिखा? यह उसी मतलब की बात है कि जिस बेटे की स्त्री को भी घर में डालने से पैग़म्बर साहेब न बचे, अन्य से क्योंकर बचे होंगे?ऐसी चतुराई से भी बुरी बात में निन्दा होना कभी नहीं छूट सकता। क्या जो कोई पराई स्त्री भी नबी से प्रसन्न होकर विवाह करना चाहे तो भी हलाल है?और यह महा अधर्म की बात है कि नबी जिस स्त्री को चाहे छोड़ देवे और मुहम्मद साहेब की स्त्री लोग यदि पैग़म्बर अपराधी भी हो तो कभी न छोड़ सकें! जैसे पैग़म्बर के घरों में अन्य कोई व्यभिचार दृष्टि से प्रवेश न करें तो वैसे पैग़म्बर साहेब भी किसी के घर में प्रवेश न करें। क्या नबी जिस किसी के घर में चाहें निश्शंक प्रवेश करें और माननीय भी रहें? भला! कौन ऐसा हृदय का अन्धा है कि जो इस कुरान को ईश्वरकृत और मुहम्मद साहेब को पैग़म्बर और कुरानोक्त ईश्वर को परमेश्वर मान सके। बड़े आश्चर्य की बात है कि ऐसे युक्तिशून्य धर्मविरुद्ध बातों से युक्त इस मत को अरब देशनिवासी आदि मनुष्यों ने मान लिया! (१४-१२६)

.... नानक जी का आशय तो अच्छा था, परन्तु विद्या कुछ भी नहीं थी। हाँ! भाषा उस देश की जोकि ग्रामों की है उसे जानते थे। वेदादि शास्त्र और संस्कृत कुछ भी नहीं जानते थे। जो जानते होते तो 'निर्भय' शब्द को 'निर्भो' क्यों लिखते? और इसका दृष्टान्त उनका बनाया संस्कृती स्तोत्र है। चाहते थे मैं संस्कृत में भी

पग अड़ाऊँ, परन्तु बिना पढ़े संस्कृत कैसे आ सकती है? हाँ, उन ग्रामीणों के सामने कि जिन्होंने संस्कृत कभी सुना भी नहीं था 'संस्कृती' बनाकर संस्कृत के भी पण्डित बन गए होंगे। यह बात अपने मान-प्रतिष्ठा और अपनी प्रख्याति की इच्छा के बिना कभी न करते। उनको अपनी प्रतिष्ठा की इच्छा अवश्य थी। नहीं तो जैसी भाषा जानते थे कहते रहते और यह भी कह देते कि मैं संस्कृत नहीं पढ़ा। जब कुछ अभिमान था तो मान-प्रतिष्ठा के लिए कुछ दम्भ भी किया होगा, इसीलिए उनके ग्रन्थ में जहाँ-तहाँ वेदों की निन्दा और स्तुति भी है, क्योंकि जो ऐसा न करते तो उनसे भी कोई वेद का अर्थ पूछता जब न आता तब प्रतिष्ठा नष्ट होती, इसीलिए पहले ही अपने शिष्यों के सामने कहीं-कहीं वेदों के विरुद्ध बोलते थे और कहीं-कहीं वेद के लिए अच्छा भी कहा है, क्योंकि जो कहीं अच्छा न कहते तो लोग उनको नास्तिक बताते। (११-२७५)

अच्छे व्यक्ति की पहचान की पहली कसौटी उसकी भाषा होती है। क्या उक्त प्रकार की भाषा शैली एक पूर्ण विद्वान और संन्यासी को शोभा देती है? क्या उक्त विषय वस्तु में एक ब्रह्मचारी ने शास्त्रीय आदर्शों का उल्लंघन नहीं किया है?

स्वामी जी लिखते हैं कि ''यदि किसी मत का विद्वान किसी अन्य मत की निंदा करता है तो निंदा करने वाले विद्वान की अच्छी बातें भी दोषयुक्त हो जाती हैं।'' (१२-६५)

क्या यह बात स्वामी दयानंद पर लागू नहीं होती?

स्वामी जी लिखते है कि ''जो अपने ही मुख से अपनी प्रशंसा और अपने ही धर्म को बड़ा कहना और दूसरों की निंदा करना यह मूर्खता की बात है, क्योंकि प्रशंसा उसी की ठीक है जिसकी दूसरे विद्वान करें। अपने मुख से अपनी प्रशंसा तो चोर भी करते हैं।'' (१२-६६)

क्या यह बात स्वामी दयानंद पर लागू नहीं होती?

स्वामी जी लिखते है कि, ''बहुत मनुष्य ऐसे हैं जिनको अपने दोष तो नहीं दीखते, किन्तु दूसरों के दोष देखने में अति उद्युक्त रहते हैं। यह न्याय की बात नहीं, क्योंकि प्रथम अपने दोष देख, निकाल

के पश्चात दूसरे के दोषों में दृष्टि देके निकालें। (१२-८)

क्या यह बात स्वामी दयानंद पर लागू नहीं होती?

स्वामी जी लिखते हैं कि, ''जो मनुष्य पक्षपाती होता है, वह अपने असत्य को भी सत्य और दूसरे विरोधी मतवाले के सत्य को भी असत्य सिद्ध करने में प्रवृत्त होता है। इसलिए वह सत्य मत को प्राप्त नहीं हो सकता।'' (भूमिका)

क्या यह बात स्वामी जी पर लागू नहीं होती?

स्वामी जी लिखते हैं कि, ''बहुत से हठी, दुराग्रही मनुष्य होते हैं कि जो वक्ता के अभिप्राय से विरुद्ध कल्पना किया करते हैं, विशेषकर मत वाले लोग। क्योंकि मत के आग्रह से उनकी बुद्धि अन्धकार में फंस के नष्ट हो जाती है।'' (भूमिका)

क्या यह बात स्वामी जी पर लागू नहीं होती?

स्वामी जी ने 'सत्यार्थ प्रकाश' में लिखा है कि एक ब्रह्मचारी के लिए अष्ट प्रकार के मैथुन जैसे स्त्री दर्शन, स्त्री चर्चा और स्त्री संग अदि सब निषिद्ध है, मगर स्वामी जी ने अपनी पुस्तक में न केवल स्त्री चर्या और सेक्स चर्चा की है, बल्कि एक नव विवाहित जोड़े को गर्भाधान किस प्रकार करना चाहिए ? इस विधि का खुला चित्रण किया है।

विषय वस्तु पर एक नज़र डालिए -

.... जब वीर्य का गर्भाशय में गिरने का समय हो उस समय स्त्री और पुरूष दोनों स्थिर और नासिका के सामने नासिका, नेत्र के सामने नेत्र अर्थात् सूधा शरीर और अत्यन्त प्रसन्नचित्त रहें, डिगें नहीं। पुरूष अपने शरीर को ढीला छोड़े और स्त्री वीर्य प्राप्ति-समय अपान वायु को ऊपर खींचे, योनि को ऊपर संकोच कर वीर्य का ऊपर आकर्षण करके गर्भाशय में स्थिर करे। पश्चात् दोनों शुद्ध जल से स्नान करें।

गर्भास्थिति होने का परिज्ञान विदुषी स्त्री को तो उसी समय हो जाता है, परन्तु इसका निश्चय एक मास के पश्चात् रजस्वला न होने पर सब को हो जाता है।

जब महीने भर में रजस्वला न होने से गर्भस्थिति का निश्चय हो जाए तब से एक वर्ष पर्यन्त स्त्री-पुरूष का समागम कभी न होना चाहिए, क्योंकि ऐसा होने से सन्तान उत्तम और पुनः दूसरा सन्तान भी वैसा ही होता है। अन्यथा वीर्य व्यर्थ जाता, दोनों की आयु घट जाती

और अनेक प्रकार के रोग होते हैं, परन्तु ऊपर से भाषणादि प्रेमयुक्त व्यवहार दोनों को अवश्य रखने चाहिए।

.... संतान छह दिन तक माता का दूध पिये और स्त्री भी अपने शरीर के पुष्टि के अर्थ अनेक प्रकार के उत्तम भोजन करे और योनिसंकोचादि भी करे। छठे दिन स्त्री बाहर निकले और सन्तान के दूध पीने के लिए कोई धायी रक्खे। उसको खान-पान अच्छा करावे। वह सन्तान को दूध पिलाया करे और पालन भी करे, परन्तु उसकी माता लड़के पर पूर्ण दृष्टि रक्खे, किसी प्रकार का अनुचित व्यवहार उसके पालन में न हो। स्त्री दूध बन्ध करने के अर्थ स्तन के अग्रभाग पर ऐसा लेप करे कि जिससे दूध स्रवित न हो। उसी प्रकार खान-पान का व्यवहार भी यथायोग्य रक्खे।

(४-६४, ६५, ६८)

क्या उक्त को पढ़कर ऐसा नहीं लगता कि जिस प्रकार एक योग गुरू स्त्री-पुरूषों को अनुलोम-विलोम आदि योग क्रियाओं का अभ्यास करता है ठीक इसी प्रकार स्वामी जी ने नव विवाहित जोड़ों को गर्भाधान की विधि और आगे के क्रिया कलापों और संबंधों को इतने विश्वास, साहस और ज्ञान के साथ समझाया है मानो उन्हें इस कठिन तकनीकी (Technical) कार्यों का वर्षों का तजुर्बा हो और वे इस कार्य के विशेषज्ञ (Specialist) हों। गर्भाधान की प्रक्रिया समझाने के बाद नोट में यह भी लिखा है कि, ''यह बात रहस्य की है इसलिए इतने ही से समग्र बातें समझ लेनी चाहिए, विशेष लिखना उचित नहीं है।''

कैसी विचित्र विडंबना है कि एक ऐसा व्यक्ति जो किसी विषय का अ ब स न जानता हो और वह विषय उसके लिए निषिद्ध और निंदनीय भी हो, फिर भी वह व्यक्ति उस विषय का ज्ञाता और प्रवक्ता हो। इससे अधिक धूर्तता, निर्लज्जता और दुस्साहस की बात यह देखिए कि वह व्यक्ति यह दावा भी करता है कि मैं इससे अधिक भी जानता हूँ, जिसका लिखना यहाँ उचित नहीं है। भला सेक्स संबंधी ऐसा कौन सा रहस्य है जिसे एक ब्रह्मचारी तो जान सकता है, मगर एक विवाहित नहीं जान सकता? क्या यहां प्रश्न चिंह नहीं बनता ?

एक बात यह भी देखिए कि 'सत्यार्थ प्रकाश' में लगभग ४० बार वीर्य शब्द का प्रयोग हुआ है और लिखा है कि यह अमूल्य है। स्वामी जी के जीवन चरित्र को पढ़ने पर पता चलता है कि स्वामी जी नंगे रहा करते थे। लगभग ४८ वर्ष की उम्र के बाद उन्होंने कपड़े

पहनने प्रारम्भ किए। क्या यहीं चरित्र चिंतन है एक ब्रह्मचारी का ? क्या कोई धर्मग्रंथ किसी ब्रह्मचारी अथवा संन्यासी को नंगा रहने की अनुमति देता हैं ?

अब जहाँ तक गर्भाधान विधि का प्रश्न है, यह तो एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। इसे तो न केवल अनपढ़, गवार मनुष्य जानता है, बल्कि पशु-पक्षी भी जानते है। पशु-पक्षियों को कौनसे शास्त्रों का ज्ञान होता हैं ? उन्हें भला कौन यह सब सिखाता हैं ?

स्वामी जी ने गर्भाधान की उक्त विधि के साथ यह भी बताया कि गर्भास्थिति (Pregnancy) का निश्चय हो जाने के बाद एक वर्ष तक स्त्री-पुरूष को समागम नहीं करना चाहिए, क्योंकि ऐसा करने से अगली संतान निकृष्ट पैदा होती है, दोनों की आयु घट जाती है और अनेक प्रकार के रोग होते है। आगे यह भी लिखा है कि संतान के जन्म के बाद स्त्री योनिसंकोचादि भी करे।

स्वामी जी से किसी ने उक्त विषय से संबंधित निम्न सवाल भी किया-

प्रश्न- जब एक विवाह होगा, एक पुरूष को एक स्त्री और एक स्त्री को एक पुरूष रहेगा तब स्त्री गर्भवती, स्थिररोगिणी अथवा पुरूष दीर्घरोगी हो और दोनों की युवावस्था हो, रहा न जाय तो फिर क्या करें ?उत्तर- इस का प्रत्युत्तर नियोग विषय में दे चुके हैं और गर्भवती स्त्री से एक वर्ष समागम न करने के समय में पुरूष व स्त्री से दीर्घरोगी पुरूष की स्त्री से न रहा जाए तो किसी से नियोग करके उसके लिए पुत्रोत्पत्ति कर दे, परन्तु वेश्यागमन वा व्यभिचार कभी न करें। (४-१४६)

अब पहले तो उस सवाल पर ध्यान दीजिए, जिसमें स्वामी जी से पूछा गया है कि यदि किसी पुरूष की पत्नी गर्भवती हो और पुरूष की युवावस्था (Young Age) हो और उससे न रहा जाए तो वह पुरूष क्या करे? स्वामी जी ने बताया कि वह किसी अन्य की पत्नी से नियोग करके पुत्रोत्पत्ति कर दे। अब यहां सभ्य और बुद्धिजीवी लोग ग़ौरे करें कि अगर किसी गाँव में १० पुरूष ऐसे है जिनकी स्त्री गर्भवती है और स्त्री एक भी ऐसी नहीं है जिसे पुत्र की इच्छा हो, तो ऐसी स्थिति में वे १० युवापुरूष कहां जाए? तीसरी बात यह कि युवा गर्भवती स्त्रियों का क्या होगा? क्या गर्भवती होने पर स्त्री की कामेच्छा समाप्त हो जाती हैं? अगर उनके अंदर यौन इच्छा हो, तो वे क्या करें?

चौथी बात जो कही गई है कि गर्भवती स्त्री से समागम करने से वीर्य व्यर्थ जाएगा, अगली संतान निकृष्ट पैदा होगी, आयु घट जाएगी, अनेक प्रकार के रोग हो जाएंगे। क्या ये सब बातें चिकित्सा विज्ञान की (Medical Science) की दृष्टि से तर्क पूर्ण है ? स्वामी जी ब्रह्मचारी और योगी थे, मगर उनका स्वास्थ्य आम गृहस्थी से अच्छा नहीं था। ५८-५६ साल की आयु में स्वामी जी का वजन लगभग १५० कि० ग्राम होना क्या अच्छे स्वास्थ्य का लक्षण है। क्या स्वामी जी की उक्त सभी प्रकार की सलाह (Advisee) अतार्किक और अव्यावहारिक नहीं है ? न मालूम स्वामी जी ने कौनसा धर्मग्रंथ और चिकित्सा विज्ञान (Medical Science) पढ़कर उक्त सलाह (Advice) गृहस्थियों को दी है?

आगे स्वामी जी ने जैसा कि लिखा है कि संतान के जन्म के बाद स्त्री योनिसंकोचादि करे और छह दिन के बाद स्तन के अग्र भाग पर ऐसा लेप करे कि दूध स्रवित न हो। यहां ये दोनों बातें भी स्वामी जी से पूछने की है कि आख़िर ये योनिसंकोचादि क्या है? यह किस प्रकार होता है ? दूसरी बात यह भी स्वामी जी से पूछने की है कि क्या प्रसव के छह दिन के बाद स्त्री का दूध रोकना प्राकृतिक व्यवस्था के विरूद्ध नहीं हैं? तीसरी बात यह कि क्या धायी स्त्री नहीं होती, आख़िर वही बच्चे को दूध क्यों पिलाए? क्या स्वामी जी की सारी बातें बेतुकी नहीं हैं?

अश्लील विषय से संबंधित समुल्लास-१४ में कुरआन की कुछ आयतों की समीक्षा के कुछ अंश भी देखिए -

.... वाह क्या कहना इसके बहिश्त की प्रशंसा कि वह अरबदेश से भी बढ़कर दीखती है! और जो मद्य मांस पी-खाके उन्मत्त होते हैं इसलिए अच्छी-अच्छी स्त्रियाँ और लौंडे भी वहाँ अवश्य रहने चाहिए नहीं तो ऐसे नशेबाजों के शिर में गरमी चढ़ के प्रमत्त हो जावें। अवश्य बहुत स्त्री-पुरूषों के बैठने सोने के लिए बिछौने बड़े-बड़े चाहिए। जब खुदा कुमारियों को बहिश्त में उत्पन्न करता है तभी तो कुमारे लड़कों को भी उत्पन्न करता है। भला कुमारियों का तो विवाह जो यहाँ से उम्मेदवार होकर गये हैं उनके साथ खुदा ने लिखा पर उन सदा रहनेवाले लड़कों का भी किन्हीं कुमारियों के साथ विवाह न लिखा तो क्या वे भी उन्हीं उम्मेदवारों के साथ कुमारीवत् दे दिये जावेंगें? इसकी व्यवस्था कुछ भी न लिखी। यह खुदा से बड़ी भूल क्यों हुई? यदि बराबर अवस्थावाली सुहागिन स्त्रियाँ पतियों को पाके बहिश्त में रहती हैं तो ठीक नहीं हुआ, क्योंकि स्त्रियों से पुरूष का आयु दूना-ढाई गुना चाहिए,

यह तो मुसलमानों के बहिश्त की कथा है (१४-१४३)

दूसरी जगह देखिए स्वामी जी क्या लिखते हैं -

क्योंजी मोती के वर्ण से लड़के किस लिए वहाँ रक्खे जाते हैं? क्या जवान लोग सेवा वा स्त्रीजन उनको तृप्त नहीं कर सकतीं? क्या आश्चर्य है कि जो यह महा बुरा कर्म लड़कों के साथ दुष्ट जन करते हैं उसका मूल यही कुरान का वचन हो और बहिश्त में स्वामी सेवकभाव होने से स्वामी को आनन्द और सेवक को परिश्रम होने से दुःख तथा पक्षपात क्यों हैं ? और जब खुदा ही उनको मद्य पिलावेगा तो वह भी उनका सेवकवत् ठहरेगा, फिर खुदा की बड़ाई क्योंकर रह सकेगी? और वहाँ बहिश्त में स्त्री-पुरूष का समागम और गर्भस्थिति और लड़के-बाले भी होते हैं वा नहीं ? यदि नहीं होते तो उनका विषय सेवन करना व्यर्थ हुआ और जो होते हैं तो वे जीव कहाँ से आये? और बिना खुदा की सेवा के बहिश्त में क्यों जन्मे? यदि जन्मे तो उनको बिना ईमान लाने और किन्हीं को बिना धर्म के सुख मिल जाए इससे दूसरा बड़ा अन्याय कौन-सा होगा? (१४-१५२)

उक्त कुरआन की समीक्षा को पढ़कर क्या ऐसा नही लगता, जैसे कोई बद-जबान आदमी शराब पीकर अनाप-शनाप बकना शुरू कर दे? एक विद्वान और सभ्य पुरूष का अपना एक बौद्धिक स्तर (Intellectual Level) और एक नैतिक स्तर (Moral Standred) होता है। वह अपनी बात शिष्टता और सभ्यता के साथ कहता है बशर्ते वह आलोचना अथवा विरोध ही क्यों न कर रहा हो। उसके तर्कों में गहनता और गंभीरता होती है। मेरा तो यही मानना है कि एक विद्वान और पुण्यात्मा पुरूष कभी ऐसी अनाप-शनाप बातें (Talking) नहीं कर सकता।

.... एक हण्डे में चुड़ते चावलों में से एक चावल की परीक्षा करने से कच्चे वा पक्के हैं सब चावल विदित हो जाते हैं। ऐसे ही इस थोड़े से लेख से सज्जन लोग बहुत सी बातें समझ लेंगे। बुद्धिमानों के सामने बहुत लिखना आवश्यक नहीं, क्योंकि दिग्दर्शनवत् सम्पूर्ण आशय को बुद्धिमान लोग जान ही लेते हैं। (१२-२३२)

मनुस्मृति : अपराध और दंड

स्वामी जी अपनी पुस्तक ''सत्यार्थ प्रकाश'' में मनुस्मृति के संदर्भ से लिखते हैं कि दंड का विधान ज्ञान और प्रतिष्ठा के आधार पर होना चाहिए। (६-२७)

स्वामी जी द्वारा संदर्भित मनुस्मृति के दंड विधान पर एक दृष्टि डालिए-

कार्षापणं भवेद्दण्ड्यो त्रान्यः प्रकृतो जनः।
तत्र राजा भवेद्दण्ड्यः सहस्रमिति धारणा।।

(मनु०, ८-३३५)

भावार्थ - साधारण प्रजा को जिस अपराध के लिए एक पैसा दंड दिया जाता है, उसी अपराध में लिप्त होने पर राजा पर हजार पैसा दंड लगाया जाना चाहिए।

अष्टापद्यं तु शूद्रस्य स्तेये भवति किल्विषम्।
षोडशैस्तु वैश्यस्य द्वात्रिंशत्क्षत्रियस्य च।।

(मनु०, ८-२३६)

भावार्थ- यदि चोरी शूद्र, वैश्य या क्षत्रिय करता है तो उन्हें पाप का क्रमशः आठ, सोलह और बत्तीस गुना भागीदार बनना पड़ता है।

ब्राह्मणस्य चतुःषष्टि पूर्णं वापि शतं भवेत्।
द्विगुणा च चतुःषष्टिस्तद्दोषगुण विद्धि सः।

(मनु०, ८-३३७)

भावार्थ - इसी प्रकार चूंकि ब्राह्मण को चोरी के गुण-दोष का सर्वाधिक ज्ञान होता है, अतः वह चोरी करता है तो उसे पाप का चौसठ गुना भागीदार बनना पड़ता है।

यहां स्वामी जी ने वर्ण को ज्ञान और प्रतिष्ठा का आधार

माना है और ब्राह्मण वर्ण को ज्ञान और प्रतिष्ठा में अन्य वर्णों क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र से ऊंचा मानते हुए किसी अपराध में ब्राह्मण के लिए अधिक सजा का प्रावधान किया है। स्वामी दयानंद ने अपनी दंड विधान की धारणा को मनुस्मृति के उक्त श्लोकों से सत्य साबित करने का प्रयास अपनी पुस्तक 'सत्यार्थ प्रकाश' में किया है। (६-२७)

अगर उक्त श्लोकों से स्वामी दयानंद की यह धारणा कि दंड का विधान ज्ञान और प्रतिष्ठा के आधार पर होना चाहिए, सत्य साबित हो भी जाता है तो अब मुनस्मृति के निम्न श्लोक भी देखिए, उनसे क्या साबित हो रहा है?

उभावपि तु तावेव ब्राह्मण्या गुप्तया सह।
विलुप्तौ शूद्रवद्दण्ड्यौ दग्ध्यौ वा कटाग्निना।।

(मनु०, ८-३७६)

भावार्थ - यदि रक्षिण ब्राह्मणी से वैश्य या क्षत्रिय शारीरिक संबंध स्थापित करे तो उन्हें शूद्र के समान दंड देते हुए आग में जलाकर मार देना चाहिए।

सहस्रं ब्राह्मणो दण्ड्योगुप्तां विप्रां बलाद् व्रजन्।
शतानि पञ्च दण्ड्यः स्यादिच्छन्त्या सह सङ्.गतः।।

(मनु०, ८-३७७)

भावार्थ - रक्षित ब्राह्मणी से यदि ब्राह्मण बलात मैथुन करता है तो उस पर दो हजार पैसा दंड लगाना चाहिए। यदि ब्राह्मणी की सहमति से ऐसा करता है तो उसे पांच सौ पैसा दंड देना चाहिए।

मौण्ड्यं प्राणान्तिकोदण्डोब्राह्मणस्य विधीन्यते।
इतरेषां तु वर्णानां दण्डः प्राणान्तिको भवेत्।।

(मनु०, ८-३७८)

भावार्थ - ब्राह्मण के सिर मुंडवाने का अर्थ ही उसको मृत्युदंड देना है, जबकि अन्य वर्णवालों को मृत्युदंड मिलने पर उनका सचमुच वध किया जाना चाहिए।

न जातु ब्राह्मणं हन्यात्सर्वपापेष्वपि स्थितम्।
राष्ट्रादेनं बहिः कुर्यात्समग्रधनमक्षतम्।।

(मनु०, ८-३७६)

भावार्थ- भले ही ब्राह्मण ने अनेक महापाप किए हों, किंतु उसका वध करना निषिद्ध है। उसे देश निकाले की सजा दी जा सकती है, ऐसी स्थिति में उसका धन उसे दे देना उचित है।

न ब्राह्मणवधाद्भूयानधर्मो विद्यते भुवि।
तस्मादस्य वधं राजा मनसापि न चिन्तयेत्।।
(मनु०, ८-३८०)

भावार्थ- ब्राह्मण के वध से बढ़कर और कोई पाप नहीं। ब्राह्मण का वध करने की तो राजा को कल्पना भी नहीं करना चाहिए।

शतं ब्राह्मणमाक्रुश्य क्षत्रियो दण्डमर्हति।
वैश्योऽप्यर्धशतं द्वे वा शूद्रस्तुवधमर्हति।।
(मनु०, ८-२६६)

भावार्थ- ब्राह्मण को यदि क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र द्वारा अपशब्द या कठोर वचन कहा जाए तो उन्हें क्रमशः सौ पैसा, डेड़ सौ पैसा तथा वध का दंड देना चाहिए।

पञ्चाशद् ब्राह्मणो दण्डः क्षत्रियस्याभिशंसने।
वैश्ये स्यादर्धपञ्चाशच्छूद्रे द्वादशको दमः।।
(मनु०, ८-२६७)

भावार्थ- यदि ब्राह्मण द्वारा क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र को अपशब्द कहा जाए तो उसे क्रमशः पचास, पच्चीस और बारह पैसा आर्थिक दंड देना चाहिए।

एकाजातिर्द्विजातीस्तु वाचा दारूण या क्षिपन्।
जिह्वयाः प्राप्नुयाच्छेदं जघन्यप्रभवो हि सः।।
(मनु०, ८-२६६)

भावार्थ - शूद्र द्वारा द्विजातियों को अपशब्द कहा जाए तो उसकी जिह्वा काट लेनी चाहिए, ऐसे अधम के लिए यही दंड उचित है।

नामजातिग्रहं त्वेषामभिद्रोहेण कुर्वतः।
निक्षेप्योऽयोमयः शंकुर्ज्वलन्नास्ये दशांगुलः ।।
(मनु०, ८-२७०)

भावार्थ - यदि शूद्र प्रभाव के अहंकार में द्विजातियों के नाम व जाति का उपहास करता है तो आग में तप्त दस उंगली शलाका (लोहे की छड़) उसके मुंह में डाल देनी चाहिए।

धर्मोपदेशं दर्पेण विप्राणामस्य कुर्वतः।
तप्तमासेचयेत्तैलं वक्तृ श्रोत्रे च पार्थिवः ।।
(मनु०, ८-२७१)

भावार्थ- यादि शूद्र दर्प में आकर द्विजातियों को धर्मोपदेश देने की धृष्टता करे तो राजा उसके मुंह व कान में खौलता तेल डलवा दे

मनुस्मृति के उक्त श्लोकों में दंड विधान को बदल दिया गया है। स्वामी दयानंद ने जहां ब्राह्मण को किसी अपराध में अन्य वर्णों से अधिक दंड का अधिकारी माना है, वहीं उक्त श्लोकों में ब्राह्मण के लिए अन्य वर्णों से कम दंड का प्रावधान किया गया है। जैसा कि उक्त श्लोकों से स्पष्ट है कि अगर क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र व्यभिचार करें तो उनको जलाकर मार देना चाहिए, जबकि ब्राह्मण को मात्र सिर मुंडवाने की सजा देनी चाहिए। स्वामी दयानंद के मतानुसार तो ब्राह्मण को जलाकर मारने से भी कोई बड़ी सजा दी जानी चाहिए। मगर यहां ब्राह्मण को सिर मुंडाने जैसी नाममात्र की सजा रखी गई है। जहां ब्राह्मण को अपशब्द कहने पर शूद्र के मुक़ाबले वैश्य को और वैश्य के मुकाबले क्षत्रिय को अधिक दंड देना चाहिए था, वहीं श्लोक (८-२६६) में उक्त प्रावधान को उलट दिया गया है, क्षत्रिय और वैश्य को आर्थिक दंड रखा गया है वहीं शूद्र के लिए मृत्यु दंड की बात कही गई है। श्लोक (८-२६६, २७०, २७१) में शूद्र द्वारा द्विजातियों को मात्र अपशब्द कहने पर अमानवीय सजा का प्रावधान किया गया है। क्या सजा का यह प्रावधान बुद्धिसम्मत और न्यायसंगत है? जिस अपराध में ब्राह्मण को क्षत्रिय से अधिक सजा होनी चाहिए थी वहीं श्लोक (८-२६७) में ब्राह्मण को अन्य वर्णों से कम सजा का प्रावधान किया गया है। अब कहां गया स्वामी जी का ज्ञान और प्रतिष्ठा पर आधारित दंड विधान? क्या स्वामी जी ने पूरी मनुस्मृति नहीं पढ़ी थी?

अब क्या स्वामी दयानंद अथवा मनुस्मृति द्वारा प्रतिपादित दंड विधान की धारणा न्यायसंगत और व्यावहारिक लगती है ? क्या कोई शासन व्यवस्था उक्त दंड विधान को मान्य करार दे सकती है? क्या उक्त विधान हास्यास्पद और अक़्ल के ख़िलाफ़ नहीं है?

हिंदू धर्मग्रंथों में पात्रों की उत्पत्ति?

स्वामी दयानंद सरस्वती (३-६४) पर लिखते हैं, ''सम्भवतियस्मिन् स सम्भवः'' कोई कहे कि माता-पिता बिना संतानोत्पत्ति हुई, किसी ने मृतक जिलाये, पहाड़ उठाये, समुद्र में पत्थर तराये, चन्द्रमा के टुकड़े किये, परमेश्वर का अवतार हुआ, मनुष्य के सींग देखें और बन्ध्या ने पुत्र और पुत्री का विवाह किया, इत्यादि सब असम्भव है, क्योंकि ये सब बातें सृष्टि क्रम के विरुद्ध हैं। जो बात सृष्टि क्रम के अनुकूल हो वही सम्भव है।

यहां यह विचारणीय है कि रामायण और महाभारत आदि हिंदू ग्रंथों में अनेक ऐसे पात्र हैं जिनकी उत्पत्ति सृष्टि क्रम के बिल्कुल विपरीत हुई है। यहां अति संक्षेप में कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं।

ऋग्वेद में आता है कि मित्र और वरुण देवता उर्वशी नामक अप्सरा को देखकर कामपीड़ित हुए। उनका वीर्य स्खलित हो गया, जिसे उन्होंने यज्ञ के कलश में डाल दिया। उसी कलश से अगस्त्य और वसिष्ठ उत्पन्न हुए।

उतासि मैत्रावरुणो वसिष्ठोर्वश्या ब्रह्मन् मनसोधि जातः,
द्रप्सं स्कन्नं ब्रह्मणा दैव्येन विश्वे देवाः पुस्करे त्वाददंत,
सत्रे ह जाताविषिता नमोभिः कुभे रेतः सिषिचतुः समानम्,
ततो ह मान उदियाय मध्यात्ततो जातमृषिमाहुर्वसिष्ठम्
(ऋग्वेद ७-३३-११,१३)

यह प्रकरण श्रीमद्भागवत महापुराण में निम्न शब्दों के साथ लिखा है।

अगस्त्यश्च वसिष्ठश्च मित्र वरुण्यो ऋषी (५)
रेतः सिषिचतुः कुम्भे उर्वश्याः सान्निधो द्रुतम (६)
(श्रीमद्भागवत महापुराण ६-१८-५,६)

अर्थात् उर्वशी को देखकर मित्र और वरुण दोनों का वीर्य स्खलित हो गया। उसे उन दोनों ने घड़े में रख दिया। उसी से मुनिवर अगस्त्य और वसिष्ठ का जन्म हुआ।

श्री राम की पत्नी सीता की पैदाइश के बारे में लिखा है कि जब राजा जनक खेत में हल चला रहे थे तब वह उन्हें खेत में मिली थी। अतः वह अयोनिजा (स्त्री के पेट से न पैदा हुई) कही गई।

अथ मे कृषतः क्षेत्रं लांगलादुत्थिता ततः,
क्षेत्रं शोधयता लब्धा नाम्ना सीतेति विश्रुता,
भूतलादुत्थिता सा तु व्यवर्धत ममात्मजा,
वीर्य शुल्केति मे कन्या स्थापितेयमयोनिजा,
(बालकांड, ६६-१३,१४)

महाभारत में राजा उपरिचर की कथा आती है जिस में कहा गया है कि उक्त राजा का एक बार जंगल में वीर्यपात हो गया। उस ने उसे उठा कर पत्ते पर रखा और उसे बाज के हाथ अपनी पत्नी के पास उसे धारण करने के लिए भेज दिया। जब वह पक्षी उसे ले जा रहा था तब उस पर दूसरा बाज झपट पड़ा जिस से वह वीर्य नीचे नदी में गिर गया और उसे मछली बनी हुई एक अप्सरा निगल गई। दस महीनों के बाद वह मछली पकड़ी गई। उसके पेट में मछेरों को एक लड़का और एक लड़की मिले। राजा उपरिचर ने लड़के का नाम 'मत्स्य' रखा और उसे अपना लिया, जबकि लड़की मछेरों को सौंप दी, जो बाद में सत्यवती नाम से प्रसिद्ध हुई और पराशर के पुत्र व्यास की मां बनी।

राजोपरिचरेत्येवं नाम तस्याथ विश्रुतम्
तस्य रेतः प्रचस्कंद चरतो गहने वने
स्कन्नमात्रं च तद् रेतो वृक्षपत्रेण भूमिपः प्रतिजग्राह
श्येनं ततोऽब्रवीत् मत्प्रियार्थमिदं सौम्य शुक्रं मम गृहं नय
अभ्यद्रवच्च तं सद्यो दृष्ट्वैवामिषशंकया
श्येनपादपरिभ्रष्टं तद् वीर्यमथ वासवम्
जग्राह तरसोपेत्य साद्रिका मत्स्यरूपिणी
कदाचिदपि मत्सीं तां बबंधुर्मत्स्यजीविनः
मासे च दशमे प्राप्ते तदा भरतसत्तम
उज्जह्रुरुदरात् तस्याः स्त्रीं पुमांसं च मानुषम्
तयोः पुमांसं जग्राह राजा परिचरस्तदा

स मत्स्यो नाम राजासीद् धार्मिकः
सा कन्या दुहिता तस्या मत्स्या
राजा दत्ता दाशाय, द्वैपायनो जज्ञे
सत्यवत्यां पराशरात्।

(महाभारत, आदिपर्व, ६३/३४, ४६-५०, ५४, ५७, ५६-६१, ६३, ६७, ८६)

महाभारत के मुख्य पात्र, महान तपस्वी, शास्त्र विद्या के मर्मज्ञ, युद्ध कला में निपुण, परम साहसी, अतिरथी द्रोणाचार्य की पैदाइश के बारे में लिखा है कि एक बार भरद्वाज ऋषि गंगा स्नान के लिए गए। वहां उन्होंने स्नान करके कपड़े बदल रही घृताची नामक अप्सरा को देखा। उस के शरीर के एक भाग से उसका कपड़ा सरक गया। उसे देख भरद्वाज का वीर्य स्खलित हो गया। जिसे उसने एक द्रोण (दोने अथवा प्याले) में रख दिया। उससे एक बालक उत्पन्न हुआ। जो दोने से उत्पन्न होने के कारण 'द्रोण' कहलाया।

गंगाद्वारं प्रति महान् बभूव भगवानृषिः,
भरद्वाज इति ख्यातः।
ददर्शाप्सरसं साक्षाद् घृताचीमाप्लुतामृषिः,
रूपयौवनसम्पन्नां मददृप्तां मदालसाम्।
तस्या पुनर्नदीतीरे वसनं पर्यवर्तत,
व्यपकृष्टांबरां दृष्ट्वां तामृषिश्चकमे ततः।
तत्र संसक्तमनसो भरद्वाजस्य धीमतः,
ततोऽस्य रेतश्चस्कंद तदृषिर्द्रोण आद्धे।
ततः समभवद् द्रोणः कलशे तस्य धीमतः।

(महाभारत आदिपर्व, १२६-३३,३८)

महाभारत के आदि पर्व में आता है कि धृतराष्ट्र की पत्नी गांधारी के पेट में दो साल तक गर्भ ठहरा रहा, जबकि उधर कुंती ने एक सुंदर पुत्र को जन्म दिया। उससे खिन्न होकर उस ने अपने गर्भ को एक दिन बहुत पीटा, जिससे उसका गर्भपात हो गया। उस गिरे मांस के लोथड़े को उठा कर वह बाहर फेंकना चाहती थी कि तभी वहां व्यास ने उपस्थित होकर कहा कि इस के सौ टुकड़े करके उन्हें घृतपूर्ण घड़ों में जल्दी से रख दो। उसने अंगूठे की पोर के परिमाप के एक सौ टुकड़े करके उन्हें घृतकुंभों में सुरक्षित रख दिया। तीन महीनों में उन घड़ों से सौ पुत्र और एक लड़की उत्पन्न हुई।

संवत्सरद्वयं तं तु गांधारी गर्भमाहितम्
श्रुत्वा कुंतीसुतं जातं सोदरं घातयामास गांधारी
दुःखमूर्च्छिता, ततो यज्ञे मांसपेशी लोहाष्ठीलेव संहता
तामुत्स्रष्टुं प्रचक्रमे, अथ द्वैपायनो त्वरितः समुपागमत्
घृतपूर्णं कुंडशतं क्षिप्रमेव विधीयताम्
सुगुप्तेषु च देशेषु रक्षा चैव विधीयताम्
अंगुष्ठपर्वमात्राणां गर्भाणां पृथगेव तु
एकाधिकशतं पूर्णं यथायोगं विशांपते
ततस्तांस्तेषु कुंडेषु गर्भानवदधे तदा
ततः पुत्रशतं पूर्णं धृतराष्ट्रस्य पार्थिव
मासत्रयेण संजज्ञे कन्या चैका शताधिका

(महाभारत, आदिपर्व, ११४-६,१३,१८,२२,४०,४१)

महाभारत में पांडव पत्नी द्रौपदी की उत्पत्ति के विषय में लिखा है कि राजा द्रुपद के पुत्रेष्टि यज्ञ में रानी को खिलाने के लिए एक विशेष तरह का पदार्थ तैयार किया गया था। उसे रानी को यज्ञशाला में उपस्थित होकर ग्रहण करना था, परंतु ऋतुमती होने के कारण वह यज्ञशाला में उपस्थित होकर उसे ग्रहण न कर सकी। इस पर याज नामक पुरोहित ने वह पदार्थ अग्नि में फेंक दिया।

एवमुक्तवा तु याजेन हुते हविषि संस्कृते,
उत्तस्थौ पावकात् तस्मात् कुमारो देवसंनिभः।
कुमारी चापि पांचाली वेदीमध्यात् समुत्थिता,
सुभगा दर्शनीयांगी।

(महाभारत आदिपर्व, १६६-३६,४४)

अर्थात् याज ने इस प्रकार कह कर उस पदार्थ को, हवन सामग्री को, जल रहे हवन कुंड में फेंक दिया। उसमें से एक लड़का निकला, जो देवताओं के समान था। उससे द्रौपदी नामक एक लड़की भी निकली जो बहुत सुंदर अंगों वाली थी। वह लड़का धृष्टद्युम्न कहलाया जो महाभारत युद्ध में पांडवों का सेनापति बना।

हिंदू शास्त्रों में आता है कि ऋषि शृंग हिरणी से, मुनि कणाद उलूकी से, मुनि माण्डव्य मेढ़की से पैदा हुए। महिषासुर भैंस से, जरासंध दो स्त्रियों से और मांधाता नाम का चक्रवर्ती राजा मनुष्य की कोख से पैदा हुआ।

उक्त उदाहरण तो एक बानगी मात्र है वरना यह सूची बहुत

लम्बी है। वाल्मीकि रामायण और महाभारत आदिधर्म ग्रंथों की विषय-वस्तु घृणात्मक और अश्लील होने के साथ-साथ अतार्किक और अविश्वसनीय, निराधार और निर्मूल है। उसका वास्तविकता और स्वाभाविकता से दूर का भी नाता नहीं है। उस पर विश्वास करना महामूर्खता है।

अगर स्वामी दयानंद जी यह मानते थे कि हिंदू धर्म ग्रंथों के उपर्युक्त सभी मुख्य पात्रों की उत्पत्ति सृष्टि क्रम के विरूद्ध और असंभव है तो फिर स्वामी जी को रामायण और महाभारत की ऐतिहासिकता का इंकार करना चाहिए था। मगर स्वामी जी ने अपने किसी भी ग्रंथ में कहीं भी न तो रामायण और महाभारत की ऐतिहासिकता का इंकार किया है और न ही दोनों ग्रंथों की ऐतिहासिकता पर संदेह व्यक्त किया है।

जैसा कि सुस्पष्ट है कि श्री राम की पत्नी सीता ज़मीन से उत्पन्न हुई और वेदों के ज्ञाता मुनि व्यास की माता सत्यवती मछली से उत्पन्न हुई। अगर उक्त दोनों पात्र काल्पनिक हैं तो फिर रामायण का न कोई ऐतिहासिक अस्तित्व शेष बचता है और न महाभारत का। इसके साथ-साथ वेदों की विषयवस्तु भी संदिग्ध हो जाती है।

स्वामी दयानंद सरस्वती ने कहीं भी सीता और सत्यवती के अस्तित्व पर संदेह नहीं किया और न ही अपने किसी ग्रंथ और आख्यान में यह बताया कि उक्त दोनों मुख्य पात्रों की उत्पत्ति की वास्तविकता क्या है?

हमारे धर्म के ठेकेदारों ने धर्म को जीवनयापन का धंधा बनाकर भोली-भाली जनता को किस्से-कहानियां सुनाकर ऐसा अक्ल का अंधा बना दिया है कि वे धर्म के ठेकेदारों के ख़िलाफ़ एक शब्द सुनने को तैयार नहीं हैं। यह हिंदू धर्म की विडंबना नहीं तो क्या है ? एक उपदेशक अगर मूर्ति पूजा, तप-तपस्या, अवतारवाद और गंगा स्नान आदि का विरोध करता है तो दूसरा उपदेशक इन सबको सार्थक और अनिवार्य समझता है।

लगता है कि हिंदू मनीषा या तो सो रही है या बेहोशी की हालत में है। हिंदू शास्त्रों में खुला व्यभिचार और अश्लीलता है, मगर उन्हें उसमें जीवन का सार नज़र आता है। हिंदू धर्मग्रंथों में हास्यास्पद और घृणास्पद क़िस्से-कहानियां हैं, मगर हिंदू मनीषा को उसमें ज्ञान-विज्ञान नज़र आता है। ऋषि-मुनियों के घटिया और घिनौने चरित्र और आचरण में उन्हें

उच्च आदर्श और नैतिकता नज़र आती है।

बेहद अफ़सोस का विषय है कि हम प्राचीनता को श्रेष्ठता समझ बैठे। हमने कभी तर्कशीलता और वैज्ञानिकता को अपने करीब तक न फटकने दिया, मगर हम कहते यही रहे कि हमसे बड़ा तार्किक और वैज्ञानिक दुनिया में कोई और नहीं। हमारी आस्थाएं, धारणाएं और कर्मकांड सब झूठे साबित हुए, मगर हमने उनसे हटना गवारा न किया। हम लुटते-पिटते और अपमानित होते रहे, मगर हम कहते यही रहे कि हम श्रेष्ठ और उत्तम हैं। दुनिया का कोई देश, धर्म और कौम हमारा मुकाबला नहीं कर सकती। क्या उक्त सभी बातें हमारे अंहकारी होने के साथ अज्ञानी होने का परिचायक नहीं है?

आज हम अपनी मूल और मौलिक आस्थाओं और धारणाओं को भी भूल गए हैं। आज शायद ही किसी को मालूम हो कि जीवन का आदि स्रोत क्या है? सृष्टि का आदि पुरूष कौन हैं? हिंदू धर्म के अग्रदूत कौन थे? हिंदू धर्म की मुख्य धार्मिक पुस्तक कौन-सी है? हमारे शास्त्र हमारे सम्मुख जीवन का क्या उद्देश्य प्रस्तुत करते हैं? हमारे त्योहारों का हमारे जीवन में क्या महत्व और उपयोगिता है? होली-दीवाली आदि मुख्य त्योहार क्यों मनाए जाते हैं? गाय को माता क्यों कहते हैं ?

कितने सत्य हैं ये तथ्य ?

वेदों के महापंडित और तर्कसंगत विचारों के पोषक स्वामी दयानंद सरस्वती द्वारा 'सत्यार्थ प्रकाश' में वर्णित और इस पुस्तक के आलेख, 'सत्यार्थ प्रकाश-भाषा, तथ्य और विषय वस्तु' में अंकित कुछ महत्वपूर्ण तथ्यों की संक्षिप्त समीक्षा निम्न प्रकार है -

१. तथ्य - प्रसूता छह दिन के पश्चात् बच्चे को दूध न पिलावे। (२-३) (४-६८)

समीक्षा - 'सत्यार्थ प्रकाश' के रचयिता ने लिखा है कि प्रसूता छः दिन के बाद बच्चे को दूध न पिलाए। इसका कारण यह लिखा है कि बच्चा प्रसूता के शरीर का अंश होता है। स्त्री प्रसव समय निर्बल हो जाती है। दूध रोकने का उपाय भी बताया है कि प्रसूता स्त्री स्तन के छिद्र पर उस औषधि का लेप करें जिससे दूध स्रवित न हो। ऐसा करने से दूसरे महीने में स्त्री युवति हो जाती है। (२-३) (४-६८)

उक्त बात जो 'सत्यार्थ प्रकाश' में लिखी है, प्रकृति और विज्ञान दोनों के शत-प्रतिशत ख़िलाफ़ है। सृष्टिकर्ता ने स्त्री जाति में स्तन और दूध की व्यवस्था आख़िर किसलिए रखी है? पशु भी अपने बच्चों को दूध पिलाते है, उनके बच्चे भी उनके शरीर का अंश ही होते हैं? चिकित्सा विज्ञान के अनुसार माता के दूध से उपयोगी बच्चे के लिए कोई आहार नहीं हो सकता। माँ का दूध बच्चे के आदर्श पोषण का अद्वितीय साधन है। प्रथम छः माह के दौरान स्तनपान के सिवा बच्चे को अन्य कोई पेय पदार्थ नहीं देना चाहिए। 'सत्यार्थ प्रकाश' में जो बात कही गई है वह नितांत अज्ञानपूर्ण और नासमझी की है।

माता द्वारा अपने बच्चे को दूध पिलाना न केवल बच्चे के लिए उपयोगी है बल्कि माता के स्वास्थ्य के लिए भी लाभदायक है।

विज्ञान ने प्रयोगों द्वारा सिद्ध किया है कि जो माताएं अपने बच्चों को दूध नहीं पिलाती, उन स्त्रियों में छाती और अण्डाशय का कैंसर होने की संभावना अत्याधिक होती है। प्रसव के शीघ्र उपरांत स्तनपान आरम्भ करने से माँ को होने वाले प्रसवोत्तर रक्तस्राव और रक्ताल्पता का खतरा कम हो जाता है। केवल स्तनपान से माँ की प्रतिरक्षण प्रणाली को मजबूती मिलती है, अगला गर्भ जल्दी नहीं ठहरता। माँ का दूध न केवल बच्चे के लिए पौष्टिक होता है बल्कि बच्चे के अन्दर बीमारियों से लड़ने की प्रतिरोधक क्षमता भी उत्पन्न करता है।

बच्चों के लिए कार्यरत संयुक्त राष्ट्र की एजेंसी यूनाइटेड नेशंस चिल्ड्रंस इमरजेंसी फंड (यूनीसेफ) ने अपनी एक रिपोर्ट में कहा है कि माताओं द्वारा अपने नवजात शिशुओं को अपना दूध न पिलाने के कारण भारत में ही प्रतिवर्ष लगभग १६ लाख बच्चे जन्म के पहले साल में ही काल कलवित हो जाते हैं। एजेंसी के अनुसार विश्व में प्रतिवर्ष एक करोड़ से ज्यादा बच्चे अतिसार और न्यूमोनिया के कारण मौत के शिकार होते हैं, अगर माताएं अपने नवजात शिशुओं को दूध पिलाए तो इन बीमारियों को रोका जा सकता है।

स्तनपान माँ व नवजात शिशु के बीच एक सर्वाधिक स्वाभाविक प्रक्रिया है। माँ के दूध में आवश्यक पोषक तत्त्व, एंटीबॉडीज हार्मोन, प्रतिरोधीकारक और ऑक्सीडेंट पाए जाते हैं जो नवजात शिशुओं के शुरुआती छः माह की वृद्धि के लिए ज़रूरी होते हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन की रिपोर्ट के अनुसार पर्याप्त मात्रा में स्तनपान का लाभ न मिलने के कारण जन्म के प्रथम वर्ष में लाखों बच्चे मौत का शिकार बन जाते हैं। विश्व में स्तनपान को बढ़ावा देने के लिए सन् १६६२ से प्रतिवर्ष १ से ७ अगस्त तक १२० देशों में स्तनपान सप्ताह आयोजित किया जाता है, जिसका मुख्य उद्देश्य स्तनपान के बारे में फैले भ्रम को समाप्त करना है।

ऋग्वेद में भी माता द्वारा बच्चे को स्तनपान का उल्लेख मिलता है :-

''अद्येदु प्रारीदमन्निमाहापीवृतो अधयन्मातुरूधः।
एमेनभाप जरिमा युवानमहेळनव्सुः सुमना बभूव।।

(ऋग्वेद १०-३२-८)

भावार्थ : जीव गर्भ में प्राण धारण करता है तथा नाना संकल्पों को सोचने लगता है। पैदा होकर देह में रहकर माता के स्तन

का पान करता है। वाणी की शक्ति से युक्त होकर गुरु के पास निवास कर योग्य मन और बुद्धि वाला हो जाता है।''

२.तथ्य - २४ वर्ष की स्त्री और ४८ वर्ष के पुरूष का विवाह उत्तम है अर्थात् स्वामी जी के मतानुसार लड़के की उम्र लड़की से दूना या ढाई गुना होनी चाहिए। (३-३१) (४-२०) (१४-१४३)

समीक्षा- जैसा कि स्वामी जी ने लिखा है कि २४ वर्ष की स्त्री और ४८ वर्ष के पुरुष का विवाह उत्तम है। यहां सोचने की बात है कि लड़के और लड़की की उम्र में २४ या ३० साल के अंतर को उत्तम विवाह कैसे कहा जा सकता है? उत्तम विवाह के लिए तो लड़का-लड़की दोनों जवान (Young) हो और दोनों की उम्र में ३-४ साल से अधिक का अंतर न हो, यही व्यावहारिक और उत्तम है। २४ वर्ष की स्त्री और ४८ वर्ष के पुरुष का विवाह क़तई अव्यावहारिक और असंगत है। इस तरह के उत्तम विवाह का प्रचलन शायद ही किसी समाज में कभी रहा हो, वैदिक समाज में भी नहीं। हमारे धर्मग्रंथ भी २५ वर्ष की उम्र में पुरुष को गृहस्थ जीवन में प्रवेश की अनुमति देते हैं। ४८ वर्ष की उम्र में पुरुष की शादी से तो शादी का उद्‌देश्य ही अधूरा रह जाएगा। मानव प्रकृति और चिकित्सा विज्ञान की दृष्टि से देखा जाए तो स्त्री पुरुष के विवाह में इतनी लम्बी अवधि के अंतर से वैवाहिक संबंधों के साथ-साथ वैचारिक तालमेल का भी अभाव रहेगा। उम्र के साथ ही मनुष्य में वैचारिक परिपक्वता (Maturity) आती है। विचार ही स्त्री-पुरुष के संबंधों में प्रगाढ़ता लाते हैं। शारीरिक ऊर्जा में असमानता और विचारों में विभिन्नता का प्रभाव आने वाली पीढ़ी पर भी पड़ेगा। २४ वर्ष की स्त्री में सेक्स ऊर्जा बढ़ोतरी की तरफ़ होगी, जबकि ४८ वर्ष के पुरुष में यह ऊर्जा उतार की तरफ होगी। सोचिए! दोनों का वैवाहिक जीवन कैसे खुशहाल रहेगा। वैवाहिक जीवन की सफलता और खुशहाली के लिए यह अतिआवश्यक है कि दोनों में सेक्स ऊर्जा एक ही दिशा में हो। स्वामी जी के किसी एक अनुयायी ने भी शायद कभी इतनी उम्र में विवाह करके उत्तम विवाह का उदाहरण प्रस्तुत किया हो। स्वामी जी द्वारा प्रतिपादित उक्त उत्तम विवाह पारिवारिक और सामाजिक दोनों व्यवस्थाओं के लिए अनुचित है। स्वामी जी का उक्त तथ्य अव्यावहारिक तो है ही, बुद्धिहीनता का परिचायक भी है।

३.तथ्य - गर्भ स्थिति का निश्चय होने पर एक वर्ष तक स्त्री-पुरुष का समागम नहीं होना चाहिए। (२-२) (४-६५)

समीक्षा - स्वामी जी का यह तथ्य भी क़तई अव्यावहारिक है। विवाह का उद्‌देश्य केवल संतानोत्पत्ति करना ही नहीं होता बल्कि स्वच्छंद यौन संबंधों को रोकना, भावनाओं को संयमित करना और जीवन में सुख सकून प्राप्त करने के लिए भी किया जाता है। चिकित्सा विज्ञान की दृष्टि से स्त्री और पुरुष में नियमित सेक्स संबंधों का होना अतिआवश्यक है। गर्भ स्थिति का निश्चय होने के बाद एक वर्ष तक स्त्री-पुरुष में सेक्स संबंधों को प्रतिबंधित करने का न कोई शारीरिक लाभ है और न नैतिक। न मालूम इस तरह की बातें करने का स्वामी जी का क्या उद्‌देश्य और औचित्य रहा होगा ? स्वामी जी अगर विवाह करते और फिर इस तरह की सलाह देते तो शायद उनकी बात में कुछ सार्थकता दिखाई पड़ती। स्वामी जी ने न स्वयं विवाह किया और न ही स्वामी जी के किसी अनुयायी ने इस नियम का पालन किया होगा। यह एक विडंबना ही है।

४.तथ्य - जब पति अथवा स्त्री संतान उत्पन्न करने में असमर्थ हों तो वह पुरूष अथवा स्त्री नियोग द्वारा संतान उत्पन्न कर सकते हैं। (४-१२२ से १४६)

समीक्षा- स्वामी जी ने नियोग को एक वेद प्रतिपादित और स्थापित व्यवस्था माना है, परंतु अफ़सोस का विषय है कि खुद स्वामी जी ने अपने जीवन में इस व्यवस्था का पालन करके अपने अनुयायियों के लिए कोई आदर्श प्रस्तुत नहीं किया, अगर स्वामी जी ऐसा करते तो इससे स्वामी जी के चरित्र को भी बल मिलता और एक मृत प्रायः हो चुकी वैदिक परंपरा पुनः जीवित हो जाती। सन् १८७५ ई० से अब तक स्वामी जी का कोई एक अनुयायी ही यह बताए कि उसने किसी विधवा से नियोग करके पुत्र उत्पन्न किया हो ? कोई भी नियम अथवा सिद्धांत कितना भी अच्छा हो, अगर वह हमारे अमल में नहीं है तो उसके अच्छा होने का कोई महत्व नहीं है। (विस्तार से पढ़ें- नियोग और नारी)

५. तथ्य - यज्ञ और हवन करने से वातावरण शुद्ध होता है। (४-६३)

समीक्षा- यह एक वैज्ञानिक (Scientific) सत्य (Truth) है कि जब किसी वस्तु को जलाया जाता है तो उसके जलने से कार्बन डाइ

ऑक्साइड गैस (CO_2) उत्पन्न होती है। हवन सामग्री कार्बन (C) के कारण और ऑक्सीजन (O_2) की उपस्थिति में ही जल सकती है। अभिक्रिया देखिए –

$$C + O_2 = CO_2$$
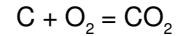
जैसा कि उक्त अभिक्रिया से स्पष्ट है कि हवन सामग्री के जलने से ऑक्सीजन (O_2) का ह्रास (loss) होगा और कार्बन डाइ ऑक्साइड (CO_2) उत्पन्न होगी। हवन सामग्री का मुख्य घटक (Component) गाय के घी को माना जाता है। घी अर्थात् वसा (Fat) एक कार्बनिक पदार्थ होता है। वसा (Fat) में कार्बन तत्व अधिक मात्रा में होने के कारण इसके जलाने से और अधिक मात्रा में कार्बन डाइ ऑक्साईड गैस (CO_2) उत्पन्न होगी।

यह भी वैज्ञानिक तथ्य (Scientific fact) है कि कार्बन डाइ ऑक्साइड गैस (CO_2) वातावरण को प्रदूषित (Polluted) करती है। हिंदू विद्वानों और धर्मगुरुओं की धारणा (Concept) है कि गाय के घी के साथ हवन और यज्ञ करने से ऑक्सीजन गैस (O_2) उत्पन्न होती है, जिससे वातावरण शुद्ध होता है। यह क़तई मिथ्या और भ्रामक धारणा है। यज्ञ और हवन करने से वातावरण सुगंधित तो हो सकता है, शुद्ध नहीं हो सकता।

वातावरण को शुद्ध करने के लिए हमें कुछ ऐसा करना होगा, जिससे ऑक्सीजन (O_2) उत्पन्न हो। इसके लिए बेहतर तरीका यह है कि हम अधिक से अधिक पेड़ लगाए, दीपावली के दिन गंधक और पोटाश का प्रयोग बिल्कुल न करें, पॉलिथीन आदि का प्रयोग बंद कर दें।

गाय के घी को आग में जलाकर यह समझना की इससे वातावरण शुद्ध होता है, ठीक ऐसा ही जैसे किसी आयुर्वेदिक औषधि में गाय का मूत्र मिलाकर यह समझना कि ऐसा करने से औषधि शुद्ध और गुणकारी होती है।

घी एक अत्यंत ही महत्वपूर्ण और कीमती पदार्थ है। यह मनुष्य के आहार का एक अति महत्वपूर्ण और अतिउत्तम घटक (Component) है। इसको आग में जलाना बेवकूफ़ी तो है ही, नैतिक अपराध भी है।

६.तथ्य– मांस खाना जघन्य अपराध है। मांसाहारियों के हाथ का खाने में आर्यों को भी यह पाप लगता है। पशुओं को मारने वालों को सब मनुष्यों की हत्या करने वाले जानिएगा। (१०–११ से १५)

समीक्षा– समीक्षा के लिए पढ़ें – मांसाहार संबंधी विषय

७. तथ्य – मुर्दों को गाड़ना बुरा है क्योंकि वह सड़कर वायु को दुर्गन्धमय कर रोग फैला देते हैं। (१३–४१, ४२)

समीक्षा– समीक्षा के लिए पढ़ें – दाह संस्कार : कितना उचित ?

८. तथ्य – लघुशंका के पश्चात् कुछ मुत्रांश कपड़ों में न लगे, इसलिए ख़तना कराना बुरा है। (१३–३१)

समीक्षा – 'सत्यार्थ प्रकाश' के रचयिता ने लिखा है कि अगर ख़तना कराना ईश्वर को इष्ट होता तो वह ईश्वर उस चमड़े को आदि सृष्टि में बनाता ही क्यों ? और जो बनाया है वह रक्षार्थ है जैसा आँख के ऊपर चमड़ा। वह गुप्त स्थान अति कोमल है जो उस पर चमड़ा न हो तो एक चींटी के काटने और थोड़ी चोट लगने से बहुत सा दुःख होवे और लघुशंका के पश्चात् कुछ मूत्रांश कपड़ों में न लगे आदि बातों के लिए ख़तना करना बुरा है। ईसा की गवाही मिथ्या है, इसका सोच-विचार ईसाई कुछ भी नहीं करते। (१३–३१)

'सत्यार्थ प्रकाश' के लेखक का यह कहना कि अगर ख़तना कराना ईश्वर को पसंद होता तो वह चमड़ा ऊपर लगाता ही क्यों ? यह कोई बौद्धिक तर्क नहीं है ? सृष्टिकर्ता ने मनुष्य को नंगा पैदा किया है, इसका मतलब यह तो हरगिज़ नहीं है कि मनुष्य कपड़े ना पहने, नंगा ही जिये, नंगा ही मरे, गंदा पैदा होता है, गंदा ही रहे। नाखून और बाल आदि भी न कटवाए। दूसरी बात यह कि सृष्टिकर्ता ने चींटी व चोट आदि से सुरक्षा हेतु झिल्ली की व्यवस्था की है। जिस चमड़ी की व्यवस्था सृष्टिकर्ता ने की है वह चमड़ी या झिल्ली न चींटीं रोधक है और न ही चोट रोधक। वह झिल्ली स्वयं इतनी अधिक कोमल है कि उसे खुद सुरक्षा की आवश्यकता है। तीसरी बात कि लघुशंका के पश्चात् कुछ मूत्रांश कपड़ों पर न लगे इसलिए झिल्ली की व्यवस्था की गई है। झिल्ली में कोई सोखता तो लगा नहीं कि वह मूत्रांश को अपने अंदर सोख लेगा। झिल्ली होने से तो और अधिक मूत्रांश झिल्ली में रूकेगा और कपड़ों को गीला और गंदा करेगा। यह तो एक साधारण सी बात है इसमें किसी शोध की भी आवश्यकता नहीं है। जहाँ तक पेशाब की बात है पेशाब शरीर की गंदगी है, इसे धोया जाए तो नुकसान ही क्या है? मगर लेखक ने पेशाब धोने की बात कहीं नहीं लिखी है, जबकि हिंदू ग्रंथों में इसका उल्लेख मिलता

है। एक उदाहरण देखिए –

एका लिंगे गुदे तिस्रस्तथैकत्र करे दश ।
उभयोः सप्त दातव्याः मृदः शुद्धिमभीप्सता ।।
(मनु०, ५–१३६)

भावार्थ – शुद्धि के इच्छुक व्यक्ति को मूत्र करने के उपरांत लिंग पर एक बार जल डालना चाहिए । मलत्याग के उपरांत गुदा पर तीन बार मिट्टी मलकर दस बार जल डालना चाहिए और जिस बायें हाथ से गुदा पर मिट्टी मली है व जल से उसे धोया है, उस पर दस बार जल डालते हुए दोनों हाथों पर सात बार मिट्टी मलकर उन्हें जल से अच्छी प्रकार धोना चाहिए ।

यहाँ यह भी विचारणीय है कि लेखक ने अपनी समीक्षा में केवल ईसा मसीह और ईसाइयों का ही उल्लेख किया है जबकि ख़तना तो यहूदी और मुसलमान भी कराते हैं।

भारतीय वैज्ञानिकों ने शोध कर दावा किया है कि ख़तना कराने वाले लोगों में एच.आई.वी. संक्रमण होने के आसार अन्य लोगों की तुलना में छः गुना कम होते हैं। एक विज्ञान की पत्रिका में यह भी बताया गया है कि पुरुषों की जनेन्द्रिय की पतली चमड़ी पर एच.आई.वी. संक्रमण ज्यादा कारगर तरीके से हमला करता है। ख़तना कराकर अगर चमड़ी को हटा दिया जाए तो संक्रमण का ख़तरा कम हो जाता है। शोधकर्ताओं का कहना है कि ख़तने के द्वारा एच.आई.वी. संक्रमण से बचाव हो सकता है, क्योंकि लिंग की बाहरी पतली झिल्ली एच.आई.वी. के लिए आसान शिकार है। ख़तना जनेन्द्रिय की झिल्ली के अन्दर जमा होने वाले पसेव (गंदगी) से तो बचाता ही है साथ ही पुरुष के पुरुषत्व को भी बढ़ाता है। इसका मनुष्य के मन–मस्तिष्क पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है। ख़तना के एड्स जैसी अन्य ख़तरनाक बीमारियों से बचाव के दूरगामी लाभ भी हो सकते हैं जो अभी मनुष्य की आंखों से ओझल हैं।

९. तथ्य – दंड का विधान ज्ञान और प्रतिष्ठा के आधर पर होना चाहिए। (६–२७)

समीक्षा– समीक्षा के लिए पढ़ें – मनु स्मृति अपराध और दंड

१०. तथ्य – ईश्वर के न्याय में क्षणमात्र भी विलम्ब नहीं होता । (१४–१०५)

समीक्षा – मनुष्य अपनी आंखों से रोज़ देख रहा है कि एक

व्यक्ति जीवन भर दूध में पानी मिलाकर बेचता है। एक व्यक्ति जीवन भर लूट–खसोट करता है। एक व्यक्ति जीवन में हज़ारों मनुष्यों का कत्ल करता है, मगर यहां कभी किसी का बाल–बांका नहीं होता। अब सोचिए! यहां न्याय हो कहां रहा है ? पाठक बताए कि स्वामी जी की धारणा में कितना दम है ? चतुर्थ समुल्लास के ९८वें क्रम में स्वामी जी लिखते हैं कि जिस समय मनुष्य अधर्म करता है उस समय फल नहीं मिलता, इसलिए अज्ञानी मनुष्य अधर्म से नहीं डरता। क्या यहां स्वामी जी ने अपनी ही धारणा को नहीं झुठला दिया है ?

११. तथ्य – ईश्वर अपने भक्तों के पाप क्षमा नहीं करता। (७–५२) (१४–१५)

समीक्षा – स्वामी जी का यह कहना कि ईश्वर अपने भक्तों के पाप क्षमा नहीं करता, इससे लगता है कि स्वामी जी की ईश्वर के अस्तित्व, दयालुता और महानता के प्रति धारणा स्पष्ट (Clear) नहीं थी। मनुष्य ग़लतियों का पुतला है। ग़लती करना उसके स्वभाव में है। शायद ही दुनिया में कोई मनुष्य ऐसा हो जिसने कभी कोई पाप न किया हो। प्रत्येक मनुष्य से ग़लती होती है, इसीलिए वह ईश्वर से प्रायश्चित, प्रार्थना और याचना करता है। ईश्वर अत्यंत कृपालु और दयालु है, अगर वह अपने भक्तों के पाप क्षमा नहीं करता तो फिर मंदिर और मस्जिद, प्रार्थना और प्रायश्चित का औचित्य समाप्त हो जाता है। स्वामी जी की यह धारणा कि ईश्वर अपने भक्तों के पाप क्षमा नहीं करता, ईश्वर की महानता और दयालुता का इंकार है।

१२. तथ्य – सूर्य केवल अपनी परिधि (axis) पर घूमता है किसी लोक के चारों ओर (orbit) नहीं घूमता। (८–७१)

समीक्षा – 'सत्यार्थ प्रकाश' के अष्टम समुल्लास में लिखा है कि सविता अर्थात् वर्षा आदि का कर्ता अपनी परिधि (Axis) में घूमता है, किन्तु किसी लोक के चारों ओर (Orbit) नहीं घूमता। (प्रश्न क्रम सं० ७०)

स्वामी जी ने अपनी उक्त धारणा को सत्य साबित करने के लिए यजुर्वेद का एक मंत्र भी प्रस्तुत किया है।

''आ कृष्णेन रजसा वर्त्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च।
हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन्।।''
(क्रम सं० ७१)

आधुनिक विज्ञान इस निष्कर्ष पर पहुंच गया है कि सभी आकाशीय

पिंड (All Celestial Bodies) न केवल अपनी धुरी (Axis) पर घूम रहे हैं, बल्कि अपनी-अपनी कक्षा (Orbit) में भी चक्कर लगा रहे हैं। जिस प्रकार हमारी पृथ्वी की अपनी धुरी (Axis) पर औसत गति १६१० कि.मी. प्रति घंटा और अपनी कक्षा (Orbit) में औसत गति १०७१६० कि.मी. प्रति घंटा है, ठीक इसी प्रकार सूरज और चांद की गतियाँ हैं। हमारा सूर्य अपने परिवार और पड़ोसी तारों के साथ एक गोलाकार कक्षा (Orbit) में लगभग ८ लाख ६० हजार कि.मी. प्रति घंटा की अनुमानित गति से मंदाकिनी के केन्द्र के चारों ओर परिक्रमा कर रहा है, जबकि सूर्य को अपनी धुरी (Axis) पर एक पूर्ण चक्कर लगाने में २५.३८ दिन का समय लगता है। इन वैज्ञानिक तथ्यों में अब कोई संदेह नहीं है, क्योंकि अब यह एक आंखों देखी सच्चाई है।

उक्त वैज्ञानिक सत्य से तो यहीं बात साबित हो रही है कि या तो स्वामी जी द्वारा प्रस्तुत वेद मंत्र में कहीं त्रुटि हैं, वह प्रमाणित नहीं है या फिर स्वामी जी द्वारा प्रस्तुत वेदार्थ ग़लत है।

१३. तथ्य – सूर्य, चन्द्र, तारे आदि पर भी मनुष्य सृष्टि है। (८-७३)

समीक्षा – सूरज और चांद पर मनुष्य आदि सृष्टि मुमकिन ही नहीं है। स्वामी जी की यह धारणा आधुनिक विज्ञान के ख़िलाफ़ है। खगोल वैज्ञानिक इस निष्कर्ष पर पहुंच चुके हैं कि सूर्य के केन्द्र का तापमान लगभग ६ हजार °C और सतह का तापमान १५ करोड़ °C है। इसी प्रकार चांद का दिन में तापमान +१३० °C और रात का तापमान -१८० °C रहता है। सूरज और चाँद पर हवा और पानी है या नहीं इस बहस की यहां आवश्यकता नहीं है एक कम पढ़ा लिखा आदमी भी यह बात आसानी से समझ सकता है कि इतने अधिक तापमान पर मनुष्य तो क्या कोई भी जीव जिन्दा नहीं रह सकता।

जिस समय स्वामी जी ने 'सत्यार्थ प्रकाश' लिखा था, उस समय विज्ञान ने इतनी तरक्क़ी नहीं की थी, न मालूम स्वामी जी ने कहां से यह पता लगा लिया कि सूर्य, चाँद आदि पर मनुष्य आदि रहते है। इससे तो यहीं बात साबित हो रही है कि स्वामी जी को वेदों की भी समुचित जानकारी नहीं थी।

१४. तथ्य – सिर के बाल रखने से उष्णता अधिक होती है और उससे बुद्धि कम हो जाती है। (१०-०२)

समीक्षा– स्वामी दयानंद की यह धारणा कि सिर के बाल

रखने से बुद्धि कम हो जाती है, बेतुकी और हास्यास्पद है। स्वामी जी ने लिखा है कि ब्राह्मण वर्ण का १६वें, क्षत्रिय वर्ण का २२वें और वैश्य वर्ण का २४वें वर्ष में मुंडन होना चाहिए। इसके बाद केवल शिखा को रखकर दाढ़ी-मूंछ और सिर के बाल सदा मुंडवाते रहना चाहिए। अति उष्ण देश हो तो सब शिखा सहित छेदन करा देना चाहिए क्योंकि सिर के बाल रखने से उष्णता अधिक होती है और बुद्धि कम हो जाती है। अब यहाँ पहला सवाल तो यह है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वर्ण का क्रमशः १६ वें, २२वें और २४वें वर्ष में मुंडन कराने का क्या बौद्धिक और वैज्ञानिक तर्क है? तीनों वर्णों के लिए अलग-अलग वर्ष निश्चित करने का क्या आधार है? क्या तीनों की गर्भावधि अलग-अलग होती है? दूसरी बात यह कि यहां शूद्र को क्यों छोड़ दिया गया है? क्या शूद्र मनुष्य जाति से नहीं होता?

तीसरी बात यह है कि वैदिक संस्कृति में इन्द्रिय संयम के साथ एक ब्रह्मचारी और संन्यासी का सिर के बाल कटाना और हजामत कराना निषिद्ध है। संन्यासियों के समाज में लम्बे बालों से उनके पद और प्रतिष्ठा का आकलन किया जाता है। हिंदू धर्म के अधिकतर गुरू, साधु-संन्यासी दाढ़ी के साथ सिर के बाल भी लम्बे रखते हैं। स्वामी दयानंद न मालूम किस आधार पर अपनी दाढ़ी मूंछ और सिर के बाल सदैव मुंडवाते रहते थे? चौथी बात यह कि स्त्रियों के लम्बे बालों को शुभ और अच्छा माना जाता है। क्या उष्णता से बचने के लिए स्त्रियों को भी गंजा रहना चाहिए? स्वामी दयानंद की यह धारणा कि सिर के बाल रखने से बुद्धि कम हो जाती है, बेतुकी और हास्यास्पद है। बालों का भला बुद्धि से क्या संबंध? सिर के बाल तो गर्मी-सर्दी से मनुष्य का बचाव करते हैं। बाल मनुष्य के शरीर की शोभा और उसके व्यक्तित्व की पहचान है।

१५. तथ्य – स्वामी दयानंद ने लिखा है कि वेदों का अवतरण ऋषियों की मातृभाषा में न होकर संस्कृत भाषा में हुआ। संस्कृत भाषा उस समय किसी देश अथवा क़ौम की भाषा नहीं थी। कारण यह लिखा है कि अगर ईश्वर किसी देश अथवा क़ौम की भाषा में वेदों का अवतरण करता तो ईश्वर पक्षपाती होता, क्योंकि जिस देश की भाषा में वेदों का अवतरण होता उसको पढ़ने और पढ़ाने में सुगमता और अन्यों को कठिनता होती। (७-८६) (७-६२)

समीक्षा– जैसा कि स्वामी जी ने लिखा है कि वेद आदि ग्रंथ हैं। सृष्टि के आदि में परमात्मा ने मनुष्यों को उत्पन्न करके अग्नि,

वायु, आदित्य और अंगिरा आदि चारों महर्षियों को चारों वेदों को ग्रहण कराया। (७-८७) यहां सवाल यह पैदा होता है कि वेदों से पहले चारों ऋषियों अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा आदि की मूलभाषा कौन सी थी? दूसरा सवाल यह कि सृष्टि के आदि में पृथ्वी पर कितने देश और क़ौमे थी और उनमें कितनी भाषाएं बोली जाती थी? तीसरा सवाल यह कि वेदों के समय पृथ्वी पर विदेशी अगर थे और वे न ऋषियों की भाषा जानते थे और न ही संस्कृत जानते थे और न ही ऋषि विदेशियों की भाषा जानते थे तो ऋषियों ने उन्हें वेदों का ज्ञान किस प्रकार कराया?

अब जहां तक पक्षपात का सवाल है तो क्या ईश्वर ने सभी मनुष्यों को सभी सुख-सुविधाएं, स्वास्थ्य, ज्ञान, आयु आदि समान रूप से प्रदान की है? स्वामी जी का यह कहना कि अगर किसी देश भाषा में वेदों का प्रकाश होता तो ईश्वर पक्षपाती होता, अर्थपूर्ण, युक्ति-युक्त और स्वाभाविक नहीं है। स्वामी जी की उक्त धारणा विवेक पर आधारित न होकर मात्र कल्पना पर आधारित है। आज विश्व में सभी बड़ी क़ौमों के पास अपनी-अपनी ईश्वरीय पुस्तकें हैं, जैसे तलमूद, तौरेत, जबूर, बाइबिल, कुरआन आदि। सभी पुस्तकों का अवतरण उसी भाषा में हुआ जो संदेशवाहक की मातृभाषा थी। वेद अगर सृष्टि की आदि पुस्तक है तो फिर यह भी सत्य है कि उस समय पृथ्वी पर चंद ही मनुष्य होंगे। सृष्टि के आदि में देश-विदेश और पक्षपात की बात करना ही बेवकूफ़ी होगी।

तथ्य- जो कुलीन शुभ लक्षणयुक्त शूद्र हो तो उसको मंत्र संहिता छोड़के सब शास्त्र पढ़ावे, शूद्र पढ़े, परन्तु उसका उपनयन न करें। (३-२६)

समीक्षा- स्वामी जी 'सत्यार्थ प्रकाश' में लिखते हैं, ...८वें वर्ष के आरम्भ में द्विज अपनी सन्तानों का उपनयन करके गुरूकुल में भेज दें और शूद्रादि वर्ण उपनयन के बिना विद्या अभ्यास के लिए गुरूकुल में भेजें। (२-१५) ब्राह्मण तीनों वर्ण ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य, क्षत्रिय, क्षत्रिय और वैश्य, तथा वैश्य एक वैश्य वर्ण को यज्ञोपवीत कराके पढ़ा सकता है और जो कुलीन शुभ लक्षणयुक्त शूद्र हो तो उसको मंत्रसंहिता छोड़ के सब शास्त्र पढ़ावे, शूद्र पढ़े, परन्तु उसका उपनयन न करें। (३-२६) अब रहा सवाल यह है कि

आख़िर शूद्र कौन है? एक बच्चा शूद्र है या ब्राह्मण?इसकी पहचान की कसौटी क्या है?

दूसरा सवाल यह है कि शूद्र का उपनयन क्यों नहीं होना चाहिए? तीसरा सवाल यह है कि जब सब मनुष्यों को वेदादि शास्त्र पढ़ने-सुनने का अधिकार है तो शूद्र को मंत्रसंहिता पढ़ने का अधिकार क्यों नहीं है? चौथी बात यह है कि 'कुलीन शुभ लक्षण युक्त शूद्र' का यहां क्या आशय है? क्या शूद्र कई प्रकार के होते हैं?

यहां 'सत्यार्थ प्रकाश' में वर्णित कुछ सवाल और उनके जवाब अति संक्षेप में दिए जा रहे हैं। निष्पक्ष पाठक इन्हें पढ़ कर बखूबी अंदाज़ा लगा सकते हैं कि सवाल व जवाब कितने स्तरीय और महत्व के हैं।

किसी व्यक्ति ने स्वामी जी से सवाल किया कि मनुष्य की सृष्टि प्रथम हुई या पृथ्वी आदि की? स्वामी जी ने जवाब दिया कि पृथ्वी आदि की, क्योंकि पृथ्वी आदि के बिना मनुष्य की स्थिति और पालन सम्भव नहीं हो सकता (८-५०)।

समीक्षा- क्या उक्त सवाल व जवाब से यह अंदाज़ा नहीं होता कि सवाल करने वाला नर्सरी क्लास का बच्चा है और जवाब देने वाला पांचवी क्लास का।

किसी ने स्वामी जी से यह सवाल किया कि जगत् के बनाने में परमेश्वर का क्या प्रयोजन है? उत्तर दिया गया कि नहीं बनाने में क्या प्रयोजन है? (८-१६)

समीक्षा- क्या यह सवाल का उचित और पूर्ण जवाब है। यहां सवाल करने वाले का जवाब दिया गया है या सवाल करने वाले से सवाल किया गया है ? यह मानव जीवन से जुड़ा परम महत्व का सवाल था जिसे स्वामी जी ने कूड़ेदान में डाल दिया और जो आगे समझाया है वह भी स्पष्ट नहीं है।

किसी व्यक्ति ने स्वामी जी से सवाल किया कि-फल, मूल, कंद और रस इत्यादि अदृष्ट में दोष नहीं ? (१०-१८)

समीक्षा- यहां यह बात बताई गई है कि अगर कोई आर्य भंगी अथवा मुसलमान के घर का बना हुआ अदृश्य (बिना देखा) अथवा छुआ हुआ कुछ खाता है तो वह पाप का भागीदार होता है। क्या आज के वातावरण में इस तरह की संकीर्ण मानसिकता को अच्छा व व्यावहारिक कहा जा सकता है? आज तो सारी दुनिया एक हो गई

है। हिंदू मुसलमान का अंतर ही समाप्त होता जा रहा है। आज प्रत्येक धर्म और जाति का व्यक्ति एक-दूसरे के घर आता-जाता और खाता-पीता है। अब रही मांस खाने की बात, मांस न केवल ईसाई और मुसलमान खाते हैं, बल्कि मांसाहारी तो हिंदू भी होते हैं। हिंदू तो न केवल मुर्गा, बकरा, मछली आदि का मांस खाते हैं, बल्कि वे तो घृणित जानवर सुअर का मांस भी खाते हैं। सुअर का मांस हिंदुओं के कुछ वर्गों में विषेश रूप से पसंद किया जाता है।

किसी ने महर्षि से यह सवाल भी किया कि लोग गाय के गोबर से चौका लगाते हैं, अपने गोबर से क्यों नहीं लगाते? महर्षि ने जवाब दिया कि गाय के गोबर में वैसा दुर्गन्ध नहीं होता जैसा मनुष्य के मल में होता है। (१०-३६)।

समीक्षा– निष्पक्ष पाठक सवाल और जवाब से अंदाज़ा लगा सकते हैं कि सवाल कितना गंभीर और परम महत्व का किया गया है और जवाब भी कितना तार्किक व गंभीर है?

क्या सवालकर्ता नहीं जानता कि मनुष्य के मल में दुर्गन्ध होती है? क्या सवालकर्ता ने कभी मनुष्य का मल नहीं देखा होगा? क्या सवालकर्ता मनुष्य जाति का न होकर अन्य किसी जाति का था? क्या जवाब देने वाला यह नहीं जानता था कि यह कोई सवाल नहीं बनता? दूसरी बात यह भी कि अगर किसी अनाड़ी अथवा अल्पबुद्धि व्यक्ति ने स्वामी जी से इतना बेहुदा और घिनौना सवाल किया भी था तो वेदों के आधुनिक महापंडित को ऐसे सवाल को अपने महान ग्रंथ ''सत्यार्थ प्रकाश'' में लिखने की भला क्या ज़रूरत थी।?

जैन मतानुयायी ने सवाल किया कि देखो! तुम लोग बिना उष्ण किए कच्चा पानी पीते हो, वह बड़ा पाप करते हो। जैसे हम उष्ण पानी पीते हैं, वैसे तुम लोग भी पिया करो। उत्तर में कहा गया कि यह बात तुम्हारी भ्रम जाल की है, क्योंकि जब तुम पानी को उष्ण करते हो तब पानी के जीव सब मरते होंगे और उनका शरीर भी जल में रंधकर वह पानी सौंफ के अर्क तुल्य होने से जानों तुम उनके शरीरों का 'तेजाब' पीते हो। इसमें तुम बड़े पापी हो और जो ठण्डा जल पीते हैं वे नहीं। (१२-२००)

समीक्षा– यहां स्वामी जी ने यह नहीं बताया कि पानी के अंदर वह कौन से बड़े जीव हैं जो रंधकर सौंफ के अर्क के तुल्य हो जाते हैं। दूसरी बात यह है कि स्वामी जी अगर ठण्डा पानी पीने को

छोटा पाप समझते हैं, तो सब्जी, चाय, दूध आदि में जो पानी हम इस्तेमाल करते हैं उसमें भी तो जल के जीव रंधकर सौंफ के अर्क के तुल्य होते होंगे। क्या उससे बचा जा सकता है? तीसरी बात यह है कि जीव तो हवा में भी होते हैं उनसे कैसे बचा जाए? चौथी बात यह है कि उक्त में छोटे पापी व बड़े पापी की कौन-सी बात है, सांस भी सभी लेते हैं और पानी भी सभी पीते हैं अगर पानी में जीव है तो फिर पानी पीना ही पाप है, पानी गर्म हो या ठण्डा।

एक मुस्लिम मतावलंबी ने कहा कि खुदा सर्वशक्तिमान है, वह जो चाहे कर सकता है। उत्तर में कहा गया कि क्या खुदा दूसरा खुदा भी बना सकता है? अपने आप मर सकता है? मूर्ख, रोगी और अज्ञानी भी बन सकता है? (१४-२८)

समीक्षा– मुस्लिम मतावलंबी का यह कहना कि खुदा सर्वशक्तिमान है वह जो चाहे कर सकता है। कोई खुदा (ईश्वर) का इंकारी ही इस सत्य का इंकार कर सकता है। स्वामी जी द्वारा इस सत्य को रद्द करते हुए कहा गया है कि क्या खुदा दूसरा खुदा भी बना सकता है? अपने आप मर सकता है? मूर्ख रोगी और अज्ञानी बन सकता है? क्या उक्त जवाब बेतुका और मूर्खता पूर्ण नहीं है ? क्या खुदा (ईश्वर) वास्तव में सर्वशक्तिमान नहीं है ?

नोट : कोष्ठक में प्रस्तुत संदर्भ की पहली संख्या समुल्लास को और दूसरी संख्या समुल्लासों में इंगित प्रश्न, उत्तर या समीक्षा क्रम संख्या को दर्शाती है।

मांस भक्षण : आपत्ति और प्रतिक्रिया

पुस्तक में मांसाहार संबंधी विषय पर व्यापक आपत्तियां और प्रतिक्रियाएं प्राप्त हुई हैं। लिखित रूप में मुझे किसी आलोचक का कोई पत्र प्राप्त नहीं हुआ है। सभी आपत्तियां मौखिक रूप से बातचीत के दौरान और फोन पर की गई हैं। सभी आलोचकों ने एक ही बात कही है कि हिंदू शास्त्रों में कहीं भी जीव हत्या और मांस भक्षण का उल्लेख नहीं है। जीव हत्या और मांस भक्षण क्रूरता और जघन्य पाप है।

जिन लोगों ने हिंदू धर्म ग्रंथों का गंभीरता और गहनता के साथ अध्ययन किया है उन्हें यह बात आसानी से समझ में आ रही होगी कि मांस भक्षण के उक्त तथाकथित आलोचकों ने हिंदू शास्त्रों को पढ़ा तो क्या छुआ तक नहीं है। मांसाहार के अनेक हिंदू आलोचक मुझे ऐसे भी मिले हैं जो मांस भक्षण करते हैं, परंतु फिर भी मांसाहार का प्रबल विरोध करते हैं। इस तरह की मानसिकता के लोगों को क्या कहा जाएगा ?

उक्त विषय पर अनेक पढ़े-लिखे लोगों से मेरा विचार-विमर्श और चर्चा हुई है और होती रहती है, उनको मैंने हिंदू धर्म ग्रंथों वेद, रामायण, महाभारत, मनुस्मृति आदि में उल्लिखित मांस भक्षण से संबंधित मंत्रों और श्लोकों को दिखाया तो उनमें से किसी का जवाब था कि किताबों में अर्थ का अनर्थ किया गया है। किसी ने मंत्र पढ़कर किताब को अलटा-पलटा और जवाब दिया कि हमारी इन किताबों में मुसलमानों ने गड़बड़ की है।

जिन लोगों से मेरी बातचीत हुई वे सभी उच्च शिक्षा प्राप्त (Well Educated) थे, मगर उनमें मुझे न कोई तर्क शक्ति (Reasoning Power) नज़र आई और न ही उनमें कोई विश्लेषण शक्ति (Analysis

Power) मुझे दिखाई दी। जो लोग मांस खाते हैं और मांस भक्षण का विरोध करते हैं उनमें तर्क शक्ति (Logical Power) भला हो भी कैसे सकती है ?

एक वाकिये का उल्लेख करना यहां प्रासंगिक (Relevant) होगा। सन् २००६ के उत्तर प्रदेश नगर निकाय चुनाव में मेरी डयूटी पोलिंग अधिकारी के रूप में लगी। जिस मतदान केन्द्र पर मेरी डयूटी थी उस केन्द्र पर दो पोलिंग पार्टियों में कुल मिलाकर १८ मतदान कर्मी थे। सभी कर्मी हिंदू थे। मतदान से पहले दिन हम लोग मतदान केन्द्र पर पहुंच गए। दोनों मतदान स्थल पर हिंदू मुस्लिम दोनों के मतदाताओं की संख्या लगभग आधी-आधी थी। शाम को सभी लोगों का खाना दोनों ही तरफ से लाया गया। किसी मतदान अधिकारी ने मुसलमान अभिकर्ता द्वारा खाने के विषय में पूछने पर उसे इशारा कर दिया था कि खाने में नानवेज बनवाए। एक तरफ से दाल-चावल, रोटी और दूसरी तरफ से नानवेज बनवाकर लाया गया। १८ लोगों में एक व्यक्ति ऐसा था जिसने दाल रोटी खायी। १७ लोगों ने दाल को हाथ तक नहीं लगाया। क्या उक्त वाकिये से यह साबित नहीं होता कि हम अंदर से कुछ और हैं और बाहर से कुछ और। यह भी मुमकिन है कि उक्त सभी लोग अपने समाज में शाकाहार के समर्थक और प्रचारक हों। क्या यही है हम और यही है हमारा चरित्र और आचरण ?

आज हम वैज्ञानिक युग में जी रहे हैं। दुनिया में कहां क्या हो रहा है यह भी हमारी आंखों के सामने है। आज किसे मालूम नहीं है कि आर्यों के इस देश भारत में हजारों मांस प्रसंस्करण ईकाइयां (Meat Processing Units) काम कर रही हैं। किसे मालूम नहीं कि स्वामी दयानंद और स्वामी रामदेव के इस देश भारत में प्रतिदिन अरबों रुपयों का डिब्बा बंद मांस निर्यात होता है। किसे मालूम नहीं है कि शाकाहार वादियों (Extremists Vegetarianism) के इस देश भारत में मछली पालन और मुर्गी पालन को बढ़ावा देने के लिए हमारी सरकार अनुदान (Subsidy) दे रही है। अगर मांस का उक्त कारोबार क्रूरता और पाप की पराकाष्ठा है तो हमारे धर्मगुरु क्यों चुप हैं?

कल तक हिंदू राष्ट्र कहे जाने वाले पड़ोसी देश नेपाल के विश्व प्रसिद्ध गढ़ी माई मंदिर में प्रतिवर्ष करीब २००००० (दो लाख) पशुओं की बलि दी जाती है। क्या यह वही नेपाल नहीं है जहां अहिंसा के संदेशवाहक गौतम बुद्ध का जन्म हुआ था ?

नीचे हिंदू धर्मग्रंथों से मांस भक्षण संबंधी कुछ उदाहरण प्रस्तुत किए जा रहे हैं। मांसाहार के आलोचक और विरोधी इन्हें गंभीरता से पढ़े। मुझे उम्मीद है कि प्रबुद्ध आलोचक इन उदाहरणों को पढ़कर अपनी आपत्तियों पर पुनर्विचार करेंगे और अवश्य किसी निश्चित निष्कर्ष पर पहुंचेंगे।

ऋग्वेद के निम्न मंत्र को देखिए-

उक्ष्णो हि मे पंचदश साकं पचन्ति विंशमित्।
उताहमद्मि पवि इदुभा कुक्षी पृणन्ति में विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः।।

(ऋग्वेद, १०-८६-१४)

भावार्थ - मेरे लिए इंद्राणी द्वारा प्रेरित यज्ञकर्ता लोग १५-२० बैल मार कर पकाते हैं, जिन्हें खाकर मैं मोटा होता हूँ। वे मेरी कुक्षियों को भी सोम रस से भरते हैं।

यजुर्वेद के एक मंत्र में पुरुषमेध का प्राचीन इतिहास इस तरह प्रस्तुत किया गया है।

देवा यद्यज्ञं तन्वानाऽ अवध्नन् पुरुषं पशुम।

(यजुर्वेद, ३१-१५)

भावार्थ - इंद्र आदि देवताओं ने पुरुषमेध किया और पुरुष नामक पशु का वध किया।

अथर्ववेद में स्पष्ट शब्दों में पांच प्राणियों को देवता के लिए बलि दिए जाने योग्य कहा है -

तवेमे पंच पशवो विभक्ता गावो अश्वाः पुरुषा अजावयः।

(अथर्ववेद, ११-२६-२)

भावार्थ - हे पशुपति देवता, तेरे लिए गाय, घोड़ा, पुरुष, बकरी और भेड़ ये पांच पशु नियत हैं।

मनुस्मृति जो स्वामी दयानंद के चिंतन का मुख्य आधार रही है उसमें न केवल मांस भक्षण का उल्लेख और संकेत है, बल्कि मांस भक्षण की स्पष्ट अनुमति दी गई है। मनुस्मृति में मांस भक्षण की अनुमति के साथ मांस भक्षण की उपयोगिता और महत्व भी बताया गया है -

यज्ञे वधोऽवधः।

(मनु०, ५-३६)

भावार्थ - यज्ञ में किया गया वध, वध नहीं होता।

या वेदविहिता हिंसा नियतास्मिंश्चराचरे।

अहिंसामेव तां विद्याद्वेदाद्धर्मो हि निर्बभौ।।

(मनु०, ५-४४)

भावार्थ - जिस हिंसा का वेदों में विधान किया गया है, वह हिंसा न होकर अहिंसा ही है, क्योंकि हिंसा, अहिंसा का निर्णय वेद करता है।

एष्वर्थेषु पशून्हिसन्वेदतत्त्वार्थविद्द्विजः।
आत्मानं च पशुं चैव गमयत्युत्तमां गतिम्।।

(मनु०, ५-४२)

भावार्थ - वेद-कर्मज्ञ द्विज यज्ञ-कर्म में पशु वध करता है तो वह पशु-सहित उत्तम गति को प्राप्त करता है।

उष्ट्रवर्जिता एकतो दतो गोऽव्यजमृगा भक्ष्याः।

(मनु०, ५-१८)

भावार्थ- ऊंट को छोड़कर एक ओर दांतवालों में गाय, भेड़, बकरी और मृग भक्ष्य अर्थात् खाने योग्य हैं।

श्वभिर्हतस्य यन्मांसं शुचि तन्मनुरब्रवीत।
क्रव्याद्भिश्च हतस्यान्यैश्चाण्डालाद्यैश्च दस्युभिः।।

(मनु०, ५-१३४)

भावार्थ- मनु के अनुसार, कुत्तों द्वारा पकड़े गए मृग, शेरों द्वारा खाया गया कच्चा मांस, चांडाल व चोरों द्वारा मारे गए मृग का मांस शुद्ध है।

दौ मासौ मत्स्यमांसेन त्रीन्मासान् हारिणेन तु।
औरभ्रेणाथ चतुरः शाकुनेनाथ पञ्च वै।।

(मनु०, ३-२६८)

भावार्थ- विधि-विधान के द्वारा प्रदत्त मछली के मांस से मानव-पितर दो महीने तक, मृग के मांस से तीन महीने तक, भेड़ के मांस से चार महीने तक, पक्षियों के मांस से पांच महीने तक तृप्त संतुष्ट होते हैं।

षण्मासांश्छागमांसेन पार्षतेन च सप्त वै।
अष्टावैणेस्यमांसेन रौरवेण नवैव तु।।

(मनु०, ३-२७०)

भावार्थ- बकरे, चित्रमृग, भेड़ व रूरूमृग के मांस से क्रमशः सात, आठ और नौ महीने तक मानव-पितर तृप्त-संतुष्ट रहते हैं।

दशामासांस्तु तृप्यन्ति वराहमहिषामिषैः।

शशकूर्मयोस्तु मांसेन मासानेकादशैव तु।।
(मनु०, ३-२७१)

भावार्थ- सूअर और भैंस के मांस से मानव-पितर दस महीने तक संतृप्त रहते हैं और खरगोश व कछुए के मांस से ग्यारह महीने तक।

महाभारत में आया है -

गव्येन दत्तं श्राद्धे तु संवत्सरमिहोच्येत।
(अनुशासन पर्व, ८८-५)

भावार्थ- गौ के मांस से श्राद्ध करने पर पितरों की एक साल के लिए तृप्ति होती है।

महाभारत में रंतिदेव नामक एक राजा का वर्णन मिलता है जो गोमांस परोसने के कारण यशस्वी बना। महाभारत, वन पर्व में आता है -

राज्ञो महानसे पूर्व रन्तिदेवस्य वै द्विज,
द्वे सहस्रे तु वध्येते पशूनामन्वहं तदा,
अहन्यहनि वध्येते द्वे सहस्रे गवां तथा,
समांसं ददतो ह्यन्नं रन्तिदेवस्य नित्यशः,
अतुला कीर्तिरभवन्नृपस्य द्विजसत्तम,
(वनपर्व २०८-८,१०)

भावार्थ- राजा रंतिदेव की रसोई के लिए दो हजार पशु काटे जाते थे। प्रतिदिन दो हजार गाय काटी जाती थी। मांस सहित अन्न का दान करने के कारण राजा रंतिदेव की अतुलनीय कीर्ति हुई।

उक्त से कमअक़्ल व्यक्ति भी समझ सकता है कि महाभारत काल में गोवध और गोमांस भक्षण सराहनीय कार्य था न कि निंदनीय।

श्रीमद्‌वाल्मीकीय रामायण में भी मांस भक्षण का स्पष्ट उल्लेख है। निम्न श्लोक देखिए-

जब भरत सेना सहित भरद्वाज मुनि के आश्रम में जाते हैं तो भरद्वाज मुनि के आश्रम में भरत का सेना सहित मृग, मोर और मुर्गों के मांस से स्वागत सत्कार होता है।

वाप्यो मैरेयपूर्णाश्च मृष्टमांसचयैर्वृताः।
प्रतप्तपिठरैश्चापि मार्गमायूरकौक्कुटैः।।
(अयोध्या कांड, ९१-७०)

भावार्थ - भरत की सेना में आये हुए निषाद आदि निम्न वर्गों के लोगों की तृप्ति के लिए वहां मधु से भरी हुई बावड़ियां प्रकट हो

गई थी तथा उनके तटोंपर तपे हुए पिठर (कुण्ड) में पकाये हुए मृग, मोर और मुर्गों के स्वच्छ मांस भी ढेर के ढेर रख दिये गये थे।

जब रावण सीता के हरण की नीयत से साधु का वेष बनाकर वन में सीता के पास जाता है तो सीता अपना परिचय देते हुए रावण से राम के विषय में बतलाती है-

रुरून् गोधान् वराहांश्च हत्वाऽ ऽदायामिषं बहु।।
स त्वं नाम च गोत्रं च कुलमाचक्ष्व तत्त्वतः।।
एकश्च दण्डकारण्ये किमर्थ चरसि द्विज।।
(अरण्यकांड, ४७-२३, २४)

भावार्थ- 'रुरू, गोह और जंगली सूअर आदि हिंसक पशुओं का वध करके तपस्वी जनों के उपभोग में आने योग्य बहुत सा फल-मूल लेकर वे अभी आयेंगे। (उस समय आपका विशेष सत्कार होगा)। ब्रहान्! अब आप भी अपने नाम गोत्र और कुल का ठीक-ठीक परिचय दीजिए। आप अकेले इस दण्डकारण्य में किस लिये विचरते हैं ?

श्री राम जब गंगा पार करके समृद्धिशाली वत्स देश (प्रयाग) में पहुंचे तो वहां लक्ष्मण सहित दोनों भाइयों ने चार महामृगों का शिकार किया।

तौ तत्र हत्वा चतुरो महामृगान्
वराहमृश्यं पृषतं महारुरुम्।
आदाय मेध्यं त्वरितं बुभुक्षितौ
वासाय काले ययतुर्वनस्पतिम्।।
(अयोध्याकांड, ५२-१०२)

भावार्थ- वहां उन दोनों भाइयों ने मृगया विनोद के लिए वराह, ऋश्य, पृषत् और महारुरु- इन चार महामृगों पर बाणों का प्रहार किया। तत्पश्चात् जब उन्हें भूख लगी, तब पवित्र कंद-मूल आदि लेकर सायंकाल के समय ठहरने के लिए (सीताजी के साथ) एक वृक्ष के नीचे चले गये।

स्वामी तुलसीदास कृत रामचरितमानस का भी एक दोहा देखिए-

बंधु सखा संग लेहिं बोलाई। बन मृगया नित खेलहिं जाई।।
पावन मृग मारहिं जियं जानी। दिन प्रति नृपहि देखावहिं आनी।
(बालकांड, २०४-१)

भावार्थ- श्रीराम चन्द्र जी भाइयों और इष्ट-मित्रों को बुलाकर साथ ले

लेते हैं और नित्य वन में जाकर शिकार खेलते हैं। मन में पवित्र समझकर मृगों को मारते हैं और प्रतिदिन लाकर राजा (दशरथ जी) को दिखलाते हैं।

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण में राजा दशरथ द्वारा किए गए अश्वमेध यज्ञ का वर्णन मिलता है। बाल कांड में आता है कि राजा दशरथ के कोई संतान नहीं थी। पुत्रोत्पत्ति की लालसा से राजा दशरथ ने सरयू नदी के उत्तर तट पर यज्ञ भूमि का निर्माण कर शास्त्रोक्त रीति से यज्ञ किया।

देखिए अयोध्या राजा दशरथ द्वारा किया गया अश्व-मेध नामक महायज्ञ किस प्रकार संपन्न हुआ।

अथ संवत्सरे पूर्णे तस्मिन् प्राप्ते तुरंगमे ।
सरय्वाश्चोत्तरे तीरे राज्ञो यज्ञोऽभ्यवर्तत ।।
ऋष्यश्रृंग पुरस्कृत्य कर्म चक्रुर्द्विजर्षभाः ।
अश्वमेधे महायज्ञे राज्ञोऽस्य सुमहात्मनः ।।
नियुक्तास्तत्रः पशवस्तत्तदुद्दिश्य दैवतम्।
उरगाः पक्षिणश्चैव यथाशास्त्रं प्रचोदिताः।।
शामित्रे तृ हयस्तत्र तथा जलचराश्च ये।
ऋषिभिः सर्वमेवैतन्नियुक्तं शास्त्रतस्तदा।।
पशुनां त्रिशतं तत्र यूपेषु नियतं तदा ।
अश्वरत्नोत्तमं तत्र राज्ञो दशरथस्य ह।।
कौसल्या तं हयं तत्र परिचय समन्ततः ।
कृपाणैर्विससारैनं त्रिभिः परमया मुदा ।।
पतत्त्रिणा तदा सार्धे सुस्थितेन च चेतसा ।
अवसद् रजनीमेकां कौसल्या धर्मकाम्यया।।
होताध्वर्युस्तथोदाता हस्तेन समयोजयन ।
महिष्या परिवृत्त्याथ वावातामपरां तथा ।।
पतत्त्रिणस्तस्य वपामुद्धृत्य नियतेन्द्रियः ।
ऋत्विक्परमसम्पन्नः श्रपयामास शास्त्रतः।।
धूमगन्धं वपायास्तु जिघ्रति स्म नराधिपः।
यथाकालं यथान्यायं निर्णुदन् पापमात्मनः।।
हयस्य यानि चांगनि तानि सर्वाणि ब्राह्मणाः
अग्नौ प्रास्यन्ति विधिवत् समस्ताःषोडशर्त्विजः

इधर वर्ष पूरा होने पर यज्ञ सम्बन्धी अश्व भूमण्डल में भ्रमण

करके लौट आया। फिर सरयू नदी के उत्तर तट पर राजा का यज्ञ आरम्भ हुआ।

महामनस्वी राजा दशरथ के उस अश्वमेध नामक महायज्ञ में ऋष्य श्रृंग को आगे करके श्रेष्ठ ब्राह्मण यज्ञ सम्बन्धी कार्य करने लगे।

वहाँ पूर्वोक्त यूपों में शास्त्र विहित पशु, सर्प और पक्षी विभिन्न देवताओं के उद्देश्य से बाँधे गये थे ।

शामित्र कर्म में यज्ञिय अश्व तथा कूर्म आदि जलचर जन्तु जो वहाँ लाये गये थे, ऋषियों ने उन सबको शास्त्र विधि के अनुसार पूर्वोक्त यूपों में बाँध दिया।

उस समय उन यूपों में तीन सौ पशु बँधे हुए थे तथा राजा दशरथ का वह उत्तम अश्वरत्न भी वहीं बाँधा गया था।

रानी कौसल्या ने वहाँ प्रोक्षण आदि के द्वारा सब ओर से उस अश्वका संस्कार करके बड़ी प्रसन्नता के साथ तीन तलवारों से उसका स्पर्श किया।

तद्नन्तर कौसल्या देवी ने सुस्थिर चित्त से धर्मपालन की इच्छा रखकर उस अश्व के निकट एक रात निवास किया।

तत्पश्चात् होता, अध्वर्यु और उद्गाता ने राजा की (क्षत्रिय जातीय) महिषी 'कौसल्या', (वैश्य जातीय स्त्री) 'वावाता' तथा (शूद्र जातीय स्त्री) 'परिवृत्ति'- इन सबके हाथ से उस अश्व का स्पर्श कराया।

इसके बाद परम चतुर जितेन्द्रिय ऋत्विक् ने विधि पूर्वक अश्वकन्द के गूदे को निकालकर शास्त्रोक्त रीति से पकाया।

तत्पश्चात् उस गूदे की आहुति दी गयी। राजा दशरथ ने अपने पाप को दूर करने के लिये ठीक समय पर आकर विधि पूर्वक उसके धुएँ की गन्ध को सूँघा।

उस अश्वमेध यज्ञ के अंगभूत जो-जो हवनीय पदार्थ थे, उन सबको लेकर समस्त सोलह ऋत्विज ब्राह्मण अग्नि में विधिवत् आहुति देने लगे।

(बालकांड, १४-१,२,३०-३८)

ऊपर जो लिखा गया है वह तो अति संक्षेप में है, वरना हिंदू धर्मग्रंथों में इस विषय पर अभी और बहुत कुछ है। आलेख अधिक लम्बा न हो इसलिए कुछ ग्रंथों जैसे उपनिषद् और चरक संहिता आदि को छोड़ दिया गया है। जो लोग कहते हैं कि हिंदू धर्म ग्रंथों में

पशुबलि, जीव हत्या और मांस भक्षण का कहीं कोई उल्लेख नहीं है वे लोग अपने धर्मग्रंथों से क़तई अनभिज्ञ हैं। इतिहास इस बात का साक्षी है कि आर्य मांस प्रेमी थे, यज्ञों में पशु बलि को वे बहुत अधिक पुण्य का कार्य समझते थे। अतः यह सत्य है कि मांस भक्षण विज्ञान सम्मत तो है ही, धर्मशास्त्र सम्मत भी है।

अगर हम अंधविश्वास और रुढ़िवादिता को छोड़कर उक्त वैज्ञानिक सत्य को स्वीकार कर लें तो ऐसा करने से हमारी कौन सी नाक कट जाएगी? एक वैज्ञानिक सत्य को अपनाने से हम कौन सा असभ्य और अनैतिक साबित हो जाएंगे? एक वैज्ञानिक सत्य को मानने से हम कौन सा कमजोर और बुद्धिहीन समझे जाएंगे?

आदि शंकराचार्य और स्वामी दयानंद

आदि शंकराचार्य का भारतीय विचारकों में महत्वपूर्ण स्थान है। इनका जन्म दक्षिण भारत के केरल प्रांत के कालडी ग्राम में सन् ७८८ ई० में ब्राह्मण परिवार में हुआ था। इनके पिता का नाम शिवगुरू और माता का नाम आर्यम्बा था। अभी शंकर माँ के पेट में ही थे कि इनके पिता का देहवसान हो गया। कहीं ये भी लिखा है कि जब शंकर ३ वर्ष के थे, जब उनके पिता का देहवसान हुआ। मात्र ८ वर्ष की उम्र में अपनी गरीब, विवश, बेसहारा ओर उपेक्षित विधवा माँ को छोड़कर शंकर घर से भाग गए और संन्यास ग्रहण कर लिया। जब शंकर १६ वर्ष के हुए तो इनकी माँ का भी देहांत हो गया।

शंकराचार्य की पैदाइश को लेकर विचारकों में काफी मतभेद पाया जाता है। स्वामी दयानंद अपने ग्रंथ ''सत्यार्थ प्रकाश'' में लिखते है कि आदि शंकराचार्य २२०० वर्ष पूर्व (१८७५ ई० से) पैदा हुए। (११-४५) दूसरी जगह लिखा है कि शंकराचार्य के ३०० वर्ष बाद उज्जैन नगरी में विक्रमादित्य प्रतापी राजा हुआ। जबकि विक्रमादित्य का समय चौथी शताब्दी में माना जाता है। किसी ने शंकराचार्य का जन्म ४८२ ई० पूर्व तो किसी ने ६८६ ई० में माना है।

जिस दौर में शंकराचार्य ने होश संभाला उस दौर का बौद्धिक वातावरण अद्धैतवाद से ओतप्रोत था। शंकराचार्य ने उपनिषदों, ब्रह्मसूत्र और भगवद्गीता के ऊपर भाष्य लिखे। केन, कठ, ईश, प्रश्न, मुंडक, मांडूक्य छांदोग्य, बृहदारण्यक, श्वेताश्वतर, ऐतरेय और तैत्तिरीय उपनिषद् पर उनके भाष्य मिलते हैं। उनके कुछ और भी ग्रंथ है। 'ब्रह्मसूत्र' पर शंकर ने जो भाष्य लिखा है, उसे 'शारीरक भाष्य' कहते है।

शंकर ने सारे हिंदुस्तान में निरंतर यात्राएं की थी। उनका कार्य क्षेत्र कन्याकुमारी से लेकर हिमालय तक था। ३२ वर्ष की छोटी सी ज़िंदगी में उन्होंने जो काम कर दिखाया, उसकी जितनी प्रशंसा की जाए कम है।

उन्होंने हिंदुस्तान के चारों छोरों पर चार मठ स्थापित किए। इनमें एक कर्नाटक राज्य के शृंगेरी में, दूसरा पूर्वी समुद्र तट पर उड़ीसा राज्य के पूरी में, तीसरा पश्चिम समुद्र तट पर गुजरात राज्य के द्वारका में और चौथा उत्तराखण्ड राज्य के बद्रीनाथ में है। उन्होंने अपने जमाने में विचारों की बह रही अनेक धाराओं में समन्वय स्थापित करने और वेदमत की स्थापना करने की पूरी कोशिश की। मात्र ३२ वर्ष की उम्र में दक्षिण भारत के इस यात्री ने ऊँचे हिमालय के बर्फ से ढके केदारनाथ में सन् ८२० ई० में अपनी जीवन यात्रा पूर्ण की।

स्वामी दयानंद को द्वितीय शंकराचार्य कहा गया है। स्वामी जी को द्वितीय शंकराचार्य कहने का मतलब यहीं होता है कि आदि शंकराचार्य (७८८-८२०) ने अपने जीवन में जो कुछ किया और करने का प्रयास किया उसी कार्य को स्वामी दयानंद (१८२४-१८८३) ने अपने जीवन में किया और करने का प्रयास किया। मूल रूप में दोनों वेद विद्वानों का प्रयास वैदिक धारणाओं का प्रतिपादन और स्थापन करना था।

यहां कुछ तथ्यों और धारणाओं को प्रस्तुत किया जा रहा है जिन्हें लेकर दोनों वेद विद्वान में न केवल मत विभिन्नता है, बल्कि दोनों की धारणाएं परस्पर विरोधी और विपरीत है।

सर्वप्रथम स्वामी दयानंद की उन धारणाओं को देखिए जो उन्होनें वेदों के निर्देशन में कही है।

१. ईश्वर जगत का निमित्त कारण है (Efficient Cause) है उपादान कारण (Material Cause) नहीं है। (७-४५) (८-३)

२. मूलभूत सत्ताएं तीन है, ईश्वर, जीव और प्रकृति। (८-४)

३. जीव (Soul) और ब्रह्म अलग अलग हैं । (७-६०)

४. जीव (Soul) पाप-पुण्य का उत्तरदायी है। (१४-१६०)

५. पेड़-पोधे सुख-दुःख का अनुभव नहीं करते। (१२-६७)

उक्त पाँचों धारणाओं के विषय में आदि शंकराचार्य का क्या मत है, यह भी देखिए -

१. ईश्वर जगत का निमित्त कारण (Efficient Cause) भी है और उपादान कारण (Material Cause) भी। (ब्रह्मसूत्र शांकर भाष्य)

२. मूल सत्ता सिर्फ एक है ब्रह्म। (ब्रह्मसूत्र शांकर भाष्य)

३. जीव (Soul) और ब्रह्म में अभेद है अर्थात् दोनों एक ही। (ब्रह्मसूत्र शांकर भाष्य)

४. जीव (Soul) नित्य मुक्त है वह पाप-पुण्य से परे है। (ब्रह्मसूत्र शांकर भाष्य)

५. पेड़-पौधे भी सुख-दुख का अनुभव करते है। (ब्रह्मसूत्र शांकर भाष्य)

अब यहाँ विचारणीय यह है कि दोनों प्रथम कोटि के महापुरूषों और विद्वानों में किसकी धारणा और मंतव्य सत्य पर आधारित है ? जबकि दोनों विद्वानों की धारणा और चिंतन का आधार वेद और उपनिषद् है।

अब जहाँ तक प्रथम तथ्य का सवाल है जैसा कि स्वामी दयानंद ने कहा है कि ईश्वर जगत् का निमित्त कारण (Efficient Cause) है, उपादान कारण (Material Cause) नहीं है। वैदिक धर्म एकेश्वरवाद का प्रतिपादन करता है और उसे सृष्टिकर्ता भी मानता है, मगर स्वामी दयानंद ने कहा कि उपादान कारण के बिना जगत् की उत्पत्ति संभव नहीं है। ईश्वर, जीव और प्रकृति तीनों अनादि हैं। ईश्वर मात्र शिल्पी है, उसने सृष्टि का विकास किया है, सृजन नहीं किया। अर्थात् जिस प्रकार कुम्भकार ने घड़ा बनाया, मिट्टी नहीं बनाई, ठीक इसी प्रकार परमेश्वर ने जगत् बनाया। प्रकृति और जीव दोनों संसाधन (Material) पहले से मौजूद थे।

जबकि आदि शंकराचार्य ने माना है कि ईश्वर जगत् का निमित्त कारण भी है और उपादान कारण भी। अर्थात् अनादि केवल ईश्वर है, प्रकृति और जीव अनादि नहीं हैं। ईश्वर ने इन दोनों का भी सृजन किया है। (ब्रह्मसूत्र शांकर भाष्य)

अब जैसा कि स्पष्ट है दोनों धारणाएं सत्य नहीं हो सकती। अब यहां सवाल यह पैदा होता है कि किस विद्वान की धारणा सत्य पर आधारित है ? यह एक ऐसा तथ्य है जिसके अस्पष्ट और त्रुटि पूर्ण होने से जीवन और जगत् का आधार और परिभाषा ही बदल जाएगी।

अब या तो स्वामी दयानंद की धारणा दोषपूर्ण और असत्य है या फिर आदि शंकराचार्य की। हमारे पास सत्य-असत्य का निर्णय करने लिए दो ही रास्ते है या तो वेदों का गहन अध्ययन किया जाए और जाना जाए कि सृष्ट्युत्पत्ति (Creation) के विषय में वेदों की मूल धारणा क्या है ? या फिर आधुनिक विज्ञान का सहारा लिया जाए।

ऋग्वेद मंडल १० के पुरूष सूक्त और नासदीय सूक्त सृष्ट्युत्पत्ति (Creation) विषय से संबंधित है। इन्हीं सूक्तों से किसी वेद विद्वान

ने एकत्ववाद (Monism) को, किसी ने द्वैतवाद (Dualism) को और किसी ने त्रैतवाद (Triadism) को साबित कर अपने-अपने संप्रदाय खड़े किए है। यह विडंबना ही है कि जीवन और जगत् की मूलभूत सत्ता (Super Natural Power) को लेकर वेद विद्वानों में मतैक्य नहीं मिलता।

स्वामी दयानंद ने वेदों के निर्देशन में एकेश्वरवाद का प्रतिपादन भी किया है और साथ ही साथ त्रैतवाद की बात भी की है। उक्त तथ्यों में से सही तो एक ही हो सकता है। दो परस्पर विरोधी तथ्य कैसे सत्य हो सकते है ?

ऋग्वेद के निम्न मंत्र पर दृष्टि डालिए-

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्र भूतस्य जातः पतिरके आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम।।

(ऋग्वेद, १०-१२१-१)

स्वामी दयानंद सरस्वती उक्त मंत्र का भावार्थ निम्न प्रकार करते है-

भावार्थ :- हे मनुष्यों ! जो सब सूर्यादि तेजस्वी पदार्थों का आधार और जो यह जगत् हुआ है और होगा उसका एक अद्वितीय पति परमात्मा इस जगत् की उत्पत्ति के पूर्व विद्यमान था और जिसने पृथ्वी से लेके सूर्यपर्यन्त जगत् को उत्पन्न किया है उस परमात्मा देव की प्रेम से भक्ति किया करें।।

क्या स्वामी के उक्त भावार्थ से यह स्पष्ट नही हो रहा है कि परमेश्वर ने सूर्य, पृथ्वी आदि संपूर्ण ब्रह्मांड का सृजन किया है। प्रकृति और जीव अनादि नहीं हैं, एकमात्र ईश्वर अनादि है। एकमात्र वही सृष्ट्युत्पत्ति (Creation) से पूर्व विद्यमान था।

आधुनिक युग में हर चीज का वैज्ञानिक अध्ययन किया गया है। इस अध्ययन से मालूम हुआ है कि लगभग १५ बिलियन वर्ष पहले अंतरिक्ष में महाविस्फोट (Big Bang) की घटना हुई, जिसके बाद सूर्य, चंद्र, पृथ्वी आदि से निर्मित वर्तमान ब्रह्मांड अस्तित्व में आया, इससे पूर्व केवल शून्य था।

यह धारणा भारतीय दार्शनिकों में मुख्य तौर पर आदि शंकराचार्य (७८८-८२०) के वेदांत सिद्धांत की ही है। वैसे दुनिया के सभी बड़े धर्म यहूदी, ईसाई और इस्लाम आदि सब की यही धारणा है कि ईश्वर अनादि है, उसी ने अभाव से, नेस्ति से, जगत् तथा जीव को उत्पन्न किया है।

उक्त तथ्यों से यह बात साबित हो रही है कि केवल ईश्वर अनादि है। प्रकृति और जीव अनादि नहीं है। दूसरी बात यह भी ग़ौर करने की है कि जिसे हम परम शक्ति (Super Natural Power) कह रहे है उसे किसी चीज को बनाने के लिए किसी संसाधन (Material) प्रकृति और जीव आदि की भला क्या ज़रूरत है ? वो परम है और चरम है।

अब क्या उपरोक्त से यह स्पष्ट नही हो जाता कि स्वामी दयानंद का सृष्टि विषयक सिद्धांत असत्य और दोषपूर्ण धारणा पर आधारित है ? क्या यह सत्य नही है कि ईश्वर जगत् का निमित्त कारण (Efficient Cause) भी है और उपादान कारण (Material Cause) भी ?

आदि शंकराचार्य ने हिंदुस्तान के चारों दिशाओं में चार मठ स्थापित किए हैं। स्वामी दयानंद सरस्वती ने वेदों की और लौटो का आह्वान किया और एक सशक्त संगठन आर्य समाज की स्थापना की। दोनों विद्वानों में जीवन से जुड़े परम और चरम महत्व के विषय में जब इतना अधिक मतभेद है तो अन्य विषयों पर मतैक्य कैसे हो सकता है?

ठीक इसी प्रकार का मतभेद स्वामी दयानंद सरस्वती और स्वामी विवेकानंद की धारणाओं में भी पाया जाता है। स्वामी दयानंद सरस्वती ने जहां मूर्ति पूजा, अवतारवाद, तीर्थयात्रा, व्रत-उपवास, आदि सबका विरोध किया है और इन्हें पाखंड और अंधविश्वास बताया है, स्वामी विवेकानंद ने उक्त सबको सार्थक और अनिवार्य बताया है।

हिंदुत्व का प्रतिनिधित्व करने वाले कैसे थे हमारे मनीषी और विद्वान? यहां सवाल यह नहीं है कि मत विभिन्नता को धर्म ग्रंथों का दोष माना जाए या विद्वानों की अल्पज्ञता, बल्कि यहां सवाल यह कि आख़िर सत्य क्या है?

सायनाचार्य और स्वामी दयानंद

सायणाचार्य आंध्र प्रदेश के विजय नगर के निवासी थे । इनका समय सन् ई० १३१५ से १३८७ माना जाता है। इनके पिता का नाम मायण, माता का नाम श्रीमती और गुरू का नाम श्री कण्ठ था। सायण वेद विद्वान होने के साथ-साथ धुरंधर राजनीतिज्ञ और योद्धा भी थे।सायण का पारिवारिक जीवन भी बहुत सुखद था । इनके सभी पुत्र साहित्यिक, सहृदय और कला निष्णात थे। सायण का जीवन वस्तुतः बहुमुखी प्रतिभा का प्रतीक था ।

आचार्य सायण का वेद-भाष्य अन्य भाष्यकारों की तुलना में काफी विस्तृत है। सायण ने ५ संहिताओं ११ ब्राह्मण ग्रंथों और २ आरण्यक ग्रंथों पर अपने भाष्य लिखे हैं, उनकी सूची निम्न प्रकार है -

संहिताएं :- १. तैत्तिरीय संहिता २. ऋग्वेद संहिता ३. सामवेद संहिता ४. काण्व संहिता ५. अथर्व वेद संहिता ।

ब्राह्मणग्रंथ : १. तैत्तिरीय ब्राह्मण २. ऐतरेय ब्राह्मण ३. ताण्ड्य महाब्राह्मण ४. षड्विंश ब्राह्मण ५. सामविधान ब्राह्मण ६. आर्षेय ब्राह्मण ७. देवताध याय ब्राह्मण ८. उपनिषद् ब्राह्मण ६. वंश ब्राह्मण १० संहितोपनिषद् ब्राह्मण ११. शतपथ ब्राह्मण ।

आरण्यक ग्रंथ : १. तैत्तिरीय आरण्यक २. ऐतरेय आरण्यक

सायणाचार्य ने सर्वप्रथम तैत्तिरीय संहिता पर अपना भाष्य लिखा था क्योंकि यह उनकी अपनी शाखा थी ।सायण के ऋग्वेद-भाष्य पर विद्वानों ने तात्कालिक मान्यताओं के प्रस्तुतिकरण का दोषारोपण किया है ।उदाहरण के लिए उनका कथन है कि सायण ने यज्ञ को केन्द्र मानकर भाष्य प्रणयन किया है। ऐसे स्थानों पर भी जहाँ दूसरा अर्थ किया जा सकता था सायण ने खींचतान कर यज्ञ परक अर्थ करने की चेष्टा की है।

स्वामी दयानंद सरस्वती को आधुनिक वैदिक पुनर्जागरण का अग्रदूत माना जाता है। स्वामी दयानंद सरस्वती का जन्म गुजरात राज्य के

मोरवी रियासत के टंकारा नगर में १८२४ ई० में हुआ था इनके बचपन का नाम मूल शंकर था। स्वामी जी के पिता का नाम अम्बाशंकर औदीच्य ब्राह्मण और गुरू का नाम विरजानंद था स्वामी दयानंद ने बम्बई में १० अप्रैल सन् १८७५ को आर्य समाज की स्थापना की। वेदों के आधार पर हिंदू समाज के पुनर्गठन के लिए प्रयत्नशील महर्षि दयानंद ने आर्यसमाज के प्रवर्तन के साथ ही वेद मंत्रों की नयी व्याख्या भी प्रस्तुत की। उवट, सायण महीधर इत्यादि भारतीय भाष्यकारों के साथ ही पाश्चात्य वेदज्ञ प्रोफेसर मैक्समूलर की वेद व्याख्याओं से वे संतुष्ट नहीं थे।इसलिए सर्व प्रथम उन्होंने शुक्ल यजुर्वेद पर अपनी भाष्य रचना पूर्ण की। ऋग्वेद पर भी उन्होंने भाष्य प्रारम्भ किया था, मगर असामयिक निधन से उनका ऋग्वेद-भाष्य पूर्ण न हो सका। राजस्थान के अजमेर में ३० अक्टूबर सन् १८८३ को स्वामी जी का देहवसान हो गया।

कुछ दोषों के बावजूद भी भारतीय व पाश्चात्य विद्वानों ने मुक्त कण्ठ से सायण के वेद भाष्यों की प्रशंसा की है। जर्मन के कई वेदज्ञों ने स्वीकार किया है कि सायण भाष्य की सहायता लिए बिना वेदाध्ययन की दिशा में हम एक पग भी आगे नहीं बढ़ सकते। जर्मन के दार्शनिक भारतीय संस्कृति के विश्लेषक ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में संस्कृत के प्रोफेसर मैक्समूलर (१८२३-१६००) ने ३० वर्षो तक सायणाचार्य के भाष्यों पर शोध किया है । सायणाचार्य ने वेदांगों के प्रचुर उदाहरणों से अपने भाष्यों को अर्थपूर्ण बनाया है। प्राची और प्रतीची के सभी सायणोत्तर वेदानुशीली उनसे उपकृत हुए हैं। निष्कर्ष भले ही भिन्न हो किन्तु आधार सभी का सायण भाष्य ही है।

स्वामी दयानंद सरस्वती ने सायणाचार्य के वेद भाष्यों का प्रबल खंडन किया है। स्वामी दयानंद सरस्वती ने सायणाचार्य को अल्पबुद्धि कहते हुए लिखा है कि "सायण को वेदार्थ करने का अधिकार ही नहीं था।" (ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका), मेरा आर्यवेद विद्वानों से प्रश्न है कि सायण को वेद भाष्य करने का अधिकार क्यों नहीं था? क्या सायनाचार्य मनुष्य जाति से नहीं थे? और अगर यह कहा जाए कि सायनाचार्य ब्रह्मचारी और संन्यासी नहीं थे, इसलिए उन्हें वेदार्थ करने का अधिकार नहीं था, तो क्या अंगिरा, अत्री, वायु और आदित्य आदि ऋषि जिन पर प्रथम बार वेदों का अवतरण हुआ, ब्रह्मचारी और संन्यासी थे? दूसरा प्रश्न यह है कि स्वामी दयानंद सरस्वती जो न कुरआन की मूलभाषा जानते थे और न उपभाषा, क्या उन्हें कुरआन की समीक्षा करने का अधिकार था?

आक्षेप की गंदी मानसिकता से उबरें

आज साइंस और टेक्नोलॉजी की उन्नति का युग है। आज पूरी दुनिया सिमट गई है। दुनिया के किसी एक कोने में कोई घटना होती है, तो उसे उसी क्षण दुनिया के दूसरे कोनों में न केवल सुना जा सकता है बल्कि घर बैठे उसका सजीव प्रसारण (Live Telecast) देखा और रिकार्ड किया जा सकता है। आज हम न केवल मनुष्य, जीव-जन्तु और पेड़-पौधों की दुनिया से भली-भांति परिचित हो गए हैं, बल्कि आसमान को छूने का प्रयास कर रहे हैं। आज हम एक ऐसे ज़माने में जी रहे हैं, जिसकी तमन्ना शायद ही इंसान ने कभी ख़्यालो-ख़्वाबों में की होगी। आज सारी दुनिया के हालात नाश्ते की प्लेट की तरह एक टेबल पर हमारे सामने मौजूद हैं।

आज के दौर ने आदमी को इतना जिज्ञासु और तार्किक बना दिया है कि हर बात और तथ्य (Fact) के खरा-खोटा होने की पहचान ज्ञान-विज्ञान की कसौटी से करना चाहता है। आज का व्यक्ति आंख मूंदकर कोई बात मानने को हरगिज़ तैयार नहीं है। निःसंदेह यह एक स्वस्थ दृष्टिकोण है। मगर धर्म के मामले में न जाने क्यों लोग अक़्ल और तर्क से काम नहीं लेते?

आतंक को मुद्दा बनाकर आज इस्लाम को हर तरफ़ से निशाना बनाया जा रहा है। प्रोपगैंडा किया जा रहा है कि ख़ून ख़राबा और आतंक इस्लाम के मूल में निहित हैं। तथाकथित इलेक्ट्रॉनिक मीडिया अपने पूरे लाव लश्कर और तामझाम के साथ इस्लाम को बदनाम और दाग़दार करने के लिए जान-माल की हर कुर्बानी देने को तैयार है। प्रिंट मीडिया और मास मीडिया ने ऐसे हालत पैदा कर दिए हैं कि आज लोगों को 'इस्लाम' और 'मुसलमान' के शब्दों तक से नफ़रत हो गई लगती है। मगर इस्लाम मुख़ालिफ़ प्रोपगैंडे के बावजूद

आंकड़े बताते हैं कि इस्लाम कबूल करने वालों की तादाद दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। वैसे तो लोग ईसाई और बौद्ध धर्म भी कबूल कर रहे हैं, मगर इस्लाम कबूल करना अन्य धर्म कबूल करने से बिल्कुल भिन्न है।

पढ़ने और सुनने में आता है कि मुस्लिम हाकिमों और हुक्मरानों ने मज़हब के मामले में जबर से काम लिया और लोगों को तीर और तलवार का ख़ौफ़ दिखाकर इस्लाम कबूल करने पर मजबूर किया। मुझे इसमें कोई सच्चाई नज़र नहीं आती। मुझे इस तरह के इतिहास में दुराग्रह, झूठ, नफ़रत और स्वार्थ की मिलावट दिखाई पड़ती है, अगर इसमें कुछ सच्चाई मान भी ली जाए तो आज न तो मज़हबी जबर का ज़माना है, न तीर-तलवार का और न ही हिन्दुस्तान में मुस्लिम हुक्मरां हैं, फिर आज क्यों लोग इस्लाम क़बूल कर रहे हैं ? यहाँ यह भी विचारणीय है कि मुसलमानों ने इस देश पर लगभग ८०० साल हुकूमत की। ८०० साल का समय कोई मामूली समय नहीं होता। यदि इस्लाम तलवार के बल पर फैलता तो आज कोई हिंदू भारत में यह इल्ज़ाम लगाने के लिए बाक़ी न रहता कि हिंदुओं को बलात् मुसलमान बनाया गया।

एक अन्य तथ्य यह भी कहा जाता है कि लोगों ने हुक्मरां और विजयी क़ौम का मज़हब इसलिए क़बूल किया क्योंकि बज़ाहिर यह एक लाभ का सौदा था, मगर आज के हालात में इस आरोप में भी कोई वज़न व जान नज़र नहीं आती, क्योंकि आज जिन मुल्कों में इस्लाम तेज़ी से फैल रहा है, वहाँ मुस्लिम हुकूमत नहीं है। भारत, अमेरिका और जापान उक्त आरोप के ख़िलाफ़ स्पष्ट गवाही दे रहे हैं।

यह भी कहा जाता है कि भारत के भीतर दबे-कुचले, अनादृत और त्रस्त लोगों ने इस्लाम कबूल किया, क्योंकि वे हिंदू धर्म की अमानवीय जात-पात की सड़ांध से ऊब गए थे। ऊँच-नीच और छुआछूत का जो ज़हर वे सदियों से पीते आ रहे थे, उससे छुटकारा पाने का यह एक बेहतरीन उपाय था। मुसलमानों ने उन्हें बराबरी का दर्जा दिया। मुझे इस दलील में भी कोई दम नज़र नहीं आता, क्योंकि यह सच नहीं है कि केवल पतित, दलित और दबे कुचले तबक़े के लोगों ने ही इस्लाम कबूल किया हो बल्कि ऐसे तथ्य और आंकड़े मौजूद हैं कि हिंदू समाज की उच्च जातियों ने भी बड़ी तादाद में इस्लाम कबूल किया। यहाँ एक तथ्य यह भी विचारणीय है कि हिंदू

समाज के निम्न वर्ग के लोगों ने इस्लाम को ही क्यों पसंद किया, जबकि ज़ात-पात और छुआछात की ज़िल्लत से बचाने के लिए एक आन्दोलन के रूप में पहले बौद्ध धर्म मौजूद था? बौद्ध धर्म का तो मूल उद्देश्य ही हिंदू समाज की अमानवीय चतुर्वर्णीय व्यवस्था का विरोध करना था।

इतिहास के पन्ने इस बात के गवाह हैं कि न केवल शोषित और नीची जातियों के लोगों ने इस्लाम कबूल किया बल्कि हुक्मरां और विजयी क़ौम ने भी इस्लाम कबूल किया। नवीं सदी के खत्म होने से पहले केरल की मालाबार रियासत के राजा चेरामन पेरूमल ने इस्लाम क़बूल किया। तेरहवीं सदी के प्रारम्भ में तातारियों का इस्लाम कबूल करना उन लोगों के लिए एक ठोस जवाब व सबूत है जो कहते हैं कि इस्लाम तलवार की नोक से फैला। तातारी एक ऐसी खूंखार और बर्बर क़ौम थी, जिसने इस्लाम और मुसलमानों को आख़िरी हद तक तबाह और बरबाद कर डालने को अपनी ज़िंदगी का मक़सद बनाया था, मगर तातारियों का क़बूल-ए-इस्लाम इतिहास में किसी चमत्कार और मील के पत्थर से कम नहीं। इस्लाम के बड़े दुश्मन इस्लाम के पासबां बन गए। हिन्दुस्तान में सन् १५२६ से १८५७ तक जिन लोगों ने हुकूमत की और जिन्हें इतिहास मुग़लों के नाम से जानता है, वे सब तातारियों की औलाद ही थी।

अब एक नया ओछा आरोप यह भी लगाया जा रहा है कि भारत वर्ष में लविंग के जरिए हिंदू लड़के-लड़कियों को मुसलमान बनाने का नेटवर्क काम कर रहा है। इसकी तालीम के लिए मदरसे चलाए जा रहे हैं। वे मुस्लिम युवकों को शारीरिक पुष्टता और वाकचातुर्य आदि में निपुण कर उन्हें हिंदुओं की युवतियों को प्रेमजाल में फंसाने की ट्रेनिंग देते हैं, वहीं अपनी सुन्दर कन्याओं को हिंदू युवकों के प्रेम जाल में फंसाने के लिए तैयार किया जाता है। उक्त आरोप में आरोपी ने अपने आपको तो गंदी मानसिकता का घटिया इंसान साबित किया ही है साथ-साथ हिंदू लड़के-लड़कियों को अपने धर्म के प्रति अनभिज्ञ व उदासीन और निपट बावला और फुसफुसिया जीव भी साबित किया है।

प्रखर हिंदू चिंतकों ने एक आरोप यह भी लगाने का निर्णय लिया है कि इस्लाम एक बुराई और गंदगी है। बुराई और गंदगी का तेज़ी से फैलना स्वाभाविक बात है। यह कोई काबिले तारीफ़ नहीं,

बल्कि क़ाबिले नफ़रत चीज़ है। अच्छाई और सच्चाई हमेशा कम लोगों के पास होती है भीड़ के पास नहीं। अगर तथाकथित लोगों द्वारा इस्लाम पर लगाए गए उक्त आरोप को सत्य मान लिया जाए तो फिर अन्य सभी आरोप स्वतः दम तोड़ देते हैं, क्योंकि गंदगी का फैलना जब एक स्वाभाविक प्रक्रिया है, तो इसके लिए किसी तीर-तलवार, षडयंत्र या किसी सुनियोजित प्रयास की ज़रूरत ही क्या है ? यहाँ यह भी विचारणीय है कि गंदगी भी तभी फैलती है जब उसे बज़ाहिर चमकदार बनाकर पेश किया जाए। इस्लाम और मुसलमानों में ग्लैमर जैसी कोई चमक-दमक नज़र नहीं आती।

आज के कम्प्यूटराइज़्ड दौर में ऐसी बेतुकी और बेसिर-पैर की बातें लिखते और सोचते समय तथाकथित विद्वानों का दिमाग़ आख़िर कहां चला जाता है ? हम क्यों ऐसी बातें कहते हैं जो हमें खुद को बावला और घटिया साबित कर देती हैं ? आख़िर हम नैतिक और बौद्धिक रूप से इतने कमज़ोर क्यों हैं कि किसी सत्य को इसलिए मानना नहीं चाहते कि वह हमारी परंपराओं के ख़िलाफ़ है या इसलिए कि उस सत्य में हमारे मुख़ालिफ़ का विश्वास है ?

मैंने हाल ही में हरिद्वार से प्रकाशित डा. अनूप गौड़ की पुस्तक ''क्या हिंदुत्व का सूर्य डूब जाएगा'' पढ़ी। इस पुस्तक में प्रचंड हिंदू विद्वान लेखक ने मुख्यतः मतांतरण के विभिन्न तरीक़ों और मुसलमानों की बढ़ती जनसंख्या पर हार्दिक चिंता व्यक्त की है। इस पुस्तक के कुछ अंश देखिए : ''भारत में आज तक ५० करोड़ हिंदू इस्लाम की बलि चढ़ चुके हैं।'' मुसलमानों के अनुसार, ''एक जिहादी को जन्नत में ७२ हूर और १४ वर्ष से कम उम्र के लड़के शारीरिक सुख-साधन के लिए उपलब्ध होंगे।'' ''इस्लाम का मानना है कि नारी में जीव नहीं होता। अतः वह वस्तु है भोगने योग्य।'' लेखक महोदय आगे लिखते हैं कि, ''अभिव्यक्ति की पूर्ण स्वतंत्रता का नाम हिंदू है। ईश्वर के अस्तित्व और वेदों के प्रामाण्य तक को चुनौती देने वाला हिंदू है।'' उक्त अंशों से आप अंदाजा लगा सकते हैं कि लेखक महोदय का बौद्धिक और नैतिक स्तर कितना ऊँचा, सोच कितनी गहरी और जानकारी कितनी व्यापक और स्तरीय है। पुस्तक में हिंदुओं को ललकारा गया है कि मुसलमानों से धर्मयुद्ध का वक्त आ गया है, अतः हिंदुओं ! कमर कस लो, मगर बेहद अफ़सोस कि पूरी पुस्तक में कहीं लेखक महोदय ने यह नहीं बताया कि बेचारे हिंदू को मरने के बाद

मिलेगा क्या ?

धर्मातरण के उपरोक्त सभी आरोप झूठे और सतही हैं। इन आरोपों में लेशमात्र भी सच्चाई नहीं है। बिना किसी गहन अध्ययन और अनुसंधान के किसी को आरोपित करना घटिया और ओछी हरकत है। इस्लाम पर आरोप दर आरोप लगाने से पहले कम से कम इतना तो पढ़ लिया होता, जितना आरोप लगाने के लिए ज़रूरी है, हमारे आरोप तथ्यों और तर्कों पर आधारित होने चाहिए न कि झूठे और शर्मनाक। हक़ीकत में वे ही लोग इस्लाम क़बूल करते हैं जो यह बात अच्छी तरह समझ लेते हैं कि इस्लाम के बिना ज़िंदगी निरर्थक, बेमानी और बेमक़सद है। असल में इस्लाम एक वैचारिक व आदर्श शक्ति (Ideological Power) है। यही ताक़त लोगों को अपनी ओर खींच रही है। कोई क़ौम कभी बेहतरीन नमूना (Role Model) नहीं हुआ करती। आदर्श (Role Model) हमेशा व्यक्तित्व को बनाया जाता है। इस्लाम को समझने के लिए हमें मुस्लिम क़ौम का नहीं, बल्कि इस्लाम के अंतिम पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) की ज़िंदगी का स्वतंत्र और निष्पक्ष होकर गहन अध्ययन करना चाहिए।

यह इतिहास है या प्रोपगैंडा ?

महमूद गज़नवी के नाम से शायद ही कोई पढ़ा-लिखा भारतीय अनभिज्ञ हो। इतिहास के पन्नों पर लिखा है कि वह गज़नी (अफ़गानिस्तान) का सुल्तान था। वह एक तुर्क था। उसके बाप का नाम सुबुक्तगीन था। वह २७ वर्ष की आयु में सन् ९९८ में गज़नी का शासक बना। वह बड़ा ही कुरुप था। साहस और वीरता की उसमें कमी न थी, मगर वह असभ्य और क्रूर न था। भारतीय सम्पत्ति को लूटना और इस्लाम धर्म का प्रचार उसका मुख्य उद्देश्य था। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए उसने लगभग १००० ई० में भारत पर आक्रमण करने प्रारम्भ कर दिए। उसने भारत पर १७ आक्रमण किए। उसने हिंदू मंदिरों को नष्ट-भ्रष्ट किया और हिंदुओं का कत्लेआम किया। महमूद ने सन् १०२५-१०२६ में भारत के प्रसिद्ध मंदिर सोमनाथ पर आक्रमण किया। यह भारत पर उसका १६वां आक्रमण था। यह मंदिर काठियावाड़ के समुद्र तट पर स्थित है।

सरन प्रकाशन मंदिर मेरठ से प्रकाशित ''भारत वर्ष का इतिहास'' नाम की एक पुस्तक जो मैंने लगभग २० वर्ष पहले पढ़ी थी, लिखा है, ''मंदिर की आय के लिए १० हजार गांव लगे थे। मंदिर में १०० पुजारी, ५०० नर्तकियां तथा २०० गायक दर्शकों को भगवान के गीत सुनाया करते थे। मंदिर की अपार सम्पत्ति से ललचाकर महमूद अजमेर के रास्ते सोमनाथ के द्वार पर जा पहुंचा। राजपूतों ने मंदिर की रक्षा के लिए घमासान युद्ध किया, लगभग ५ हजार हिंदू मारे गए और विजय महमूद गज़नवी को मिली। सोमनाथ के मंदिर में शताब्दियों से एकत्रित अपार सम्पत्ति को लेकर उसने गज़नी के लिए प्रस्थान किया।'' लगभग १० वर्ष पहले मैंने राष्ट्र कवि रामधारी सिंह दिनकर की प्रसिद्ध पुस्तक 'संस्कृति के चार अध्याय' पढ़ी थी। उसमें दिनकर लिखते हैं, ''सोमनाथ मंदिर का ध्वंस करने से पूर्व भी महमूद गज़नवी

ने अनेक मंदिरों का विनाश किया था। लेकिन सोमनाथ मंदिर के पुजारी इस विश्वास में थे कि अन्य देवताओं पर सोमनाथ की कृपा नहीं रहने से ही उनके मंदिरों का तोड़ा जाना सम्भव हुआ है। जब महमूद को यह खबर मिली, उसने ठान लिया कि सोमनाथ को तोड़ कर वह हिंदुओं के इस विश्वास को उन्मूलित करेगा कि पत्थर का देवता शक्तिशाली होता है। महमूद, सोमनाथ सन् १०२५ ई० की जनवरी में पहुंचा। मंदिर की रक्षा के लिए सेना आ जुटी थी, लेकिन हिंदू इस विश्वास में आनन्द मना रहे थे कि मुसलमानों का सफाया करने के लिए ही सोमनाथ जी ने उन्हें बुलाकर इकट्ठा कर लिया है। सोमनाथ की रक्षा के प्रयास में कोई ५० हजार हिंदू मंदिर के द्वार पर मारे गए और मंदिर तोड़कर महमूद ने कोई २ करोड़ दीनार की सम्पत्ति लूट ली।'' (पृ०, २६१-२६२)

इसी माह सितम्बर में मैंने डॉ. सुरेन्द्र कुमार शर्मा 'अज्ञात' जी की पुस्तक ''क्या बालू की भीत पर खड़ा है हिंदू धर्म ?'' को देखा, उसके पेज न० २०३ पर सोमनाथ मंदिर के विषय में लिखा है, ''इतिहासकार इब्ने असीर ने लिखा है कि लोग किले की दीवारों पर बैठे इस विचार से प्रसन्न हो रहे थे कि ये दुस्साहसी मुसलमान अभी चंद मिनटों में नष्ट हो जाएंगे। वे मुसलमानों को बता रहे थे कि हमारा देवता तुम्हारे एक-एक आदमी को नष्ट कर देगा। जब महमूद की सेना ने नरसंहार शुरू किया, तब हिंदुओं का एक समूह दौड़ता हुआ मंदिर की मूर्ति के सामने धरती पर लेट कर उससे विजय के लिए प्रार्थना करने लगा। हिंदुओं के ऐसे दल के दल मंदिर में प्रवेश करते, जिनके हाथ गरदन के पास जुड़े होते, जो रो रहे होते और बड़े भावावेश पूर्ण ढंग से सोमनाथ की मूर्ति के आगे गिड़गिड़ा कर प्रार्थनाएं कर रहे होते। फिर वे बाहर आते, जहां उन्हें कत्ल कर दिया जाता। यह क्रम तब तक चलता रहा जब तक कि हर हिंदू कत्ल नहीं हो गया। (देखेंः सर एच.एच. इलियट और जान डाउसन कृत 'द हिस्ट्री आफ इंडिया एज टोल्ड बाई इट्स ओन हिस्टोरियनस' पृ० ४७०) इस तरह ५ लाख अंधविश्वासी हिंदुओं ने सिर तो कटवा लिए, लेकिन मुकाबला एक ने भी नहीं किया।''

अब ज़रा रूक कर सोचिए! उक्त तीनों पुस्तकों में सोमनाथ मंदिर कांड में हिंदुओं के कत्ल की जो संख्या क्रमशः ५ हजार, ५० हजार, ५ लाख लिखी है, क्या तीनों सच्ची हो सकती हैं ? यह बात

एक कम शिक्षित व्यक्ति भी आसानी से समझ सकता है कि उक्त तीनों आंकड़े झूठे तो हो सकते हैं, मगर तीनों सच्चे नहीं हो सकते। अब ज़रा सोचिए! आंकड़ों की यह भिन्नता आख़िर किस ओर इशारा कर रही है ? पाठक इतिहास के उक्त पन्नों से आसानी से अंदाज़ा लगा सकते हैं कि हमारा इतिहास कितना स्वच्छ, निष्पक्ष और विश्वसनीय है।

यह प्रूफ की गलती या कोई भूल नहीं है। यह एक प्रोपगैंडा है। यह मुसलमान और इस्लाम विरोधी मानसिकता की करतूत है। यह एक धृष्टता है। यह इतिहास का सांप्रदायिकरण है। हमारा इतिहास ऐसी विद्वेष पूर्ण करतूतों और प्रोपगैंडों से भरा पड़ा है। उक्त इतिहास का एक पन्ना तो बानगी मात्र है। यहां एक बात यह भी क़ाबिले-ग़ौर है कि जिस कांड में एक पक्ष के ५ लाख लोग मारे गए हो, क्या वहां दूसरे पक्ष का कोई एक व्यक्ति भी हताहत नहीं हुआ ?

इसी तरह का एक उदाहरण ''सांप्रदायिक इतिहास और राम की अयोध्या'' नामक पुस्तक में लिखा है। लिखा है, ''बाबर के सिपाहियों ने अयोध्या में राम मंदिर पर हमला करते समय ७५ हज़ार हिंदुओं को मौत के घाट उतार दिया और उनके रक्त को गारे की तरह इस्तेमाल कर बाबरी मस्जिद खड़ी की।'' यह पुस्तक उक्त तथ्य के खंडन में लिखी गई है। यह पुस्तक मेरे पास खस्ता हालत में है, जिसमें लेखक का नाम स्पष्ट नहीं है। एक बच्चा भी समझ सकता है कि यह एक कोरा गप्प है। एक स्थान पर लिखा है, ''अयोध्या श्रीराम जन्मभूमि मंदिर तोड़े जाते समय हिंदुओं ने जान की बाज़ी लगा दी। इस लड़ाई में १ लाख ७४ हज़ार हिंदुओं की लाश गिर जाने के बाद ही मीर बाकी तोपों के जरिए मंदिर को क्षति पहुंचा सका।'' (कनिंघम लखनऊ गजेटियर अंक-३६)

क्या इतिहास के उक्त पन्नों से यह बात साबित नहीं हो रही है कि सांप्रदायिक तत्वों द्वारा इतिहास को तोड़-मरोड़ कर ग़लत रंग देने की कुचेष्टा की गई है। ऐसा भी प्रतीत होता है कि इस्लाम और मुसलमानों के आलोचकों को इतिहास में जहां-जहां मौका मिला उसमें मनगढंत बातें जोड़ दी, छोटी सी बात को तूल देकर तिल का ताड़ बना दिया और मूल घटनाओं को विकृत करके पूरी तस्वीर ही बिगाड़ देने की हर मुमकिन कोशिश की गई।

यहां यह बात भी क़ाबिले-ग़ौर है कि भारत में चूंकि अंग्रेज़ों

ने सत्ता मुसलमानों के हाथों से छीनी थी, वे नहीं चाहते थे कि हिंदू और मुसलमान दोनों मिलकर उनके ख़िलाफ़ एकजुट हो जाए। वे चाहते थे कि दोनों क़ौमों के बीच नफ़रत और कटुता की ऐसी मज़बूत दीवार खड़ी की जाए जिसे सदियों तक न तोड़ा जा सके और वे उन्हें एक-दूसरे से लड़ाकर आराम से भारत पर हुकूमत कर सके और उनकी हुकूमत को कोई चुनौती देने वाला न हो। इस कुत्सित उद्देश्य के लिए इतिहास से बेहतर और कोई रास्ता नहीं हो सकता था। हिंदू और मुसलमानों के बीच पहले से ही संबंध नफ़रत और दुश्मनी के थे, उनको और हवा देना मुश्किल काम न था। इस उद्देश्य में उनकों बड़ी हद तक कामयाबी मिली। तथ्यात्मक दृष्टि से यह बात साबित भी हो रही है कि भारतीय इतिहास को विकृत किया गया है। यह बड़े दुर्भाग्य की बात है कि आज़ादी के ६२ सालों के बाद भी हम उसी इतिहास को अपने सिर पर ढो रहे हैं, जो हमें कायर और बेवकूफ़ साबित कर रहा है।

इतिहास के अनुसार मुस्लिम आक्रांताओं द्वारा हिंदू मंदिरों और मूर्तियों को लूटा गया, तोड़ा और तबाह किया गया। हिंदुओं को पीटा और कत्ल किया गया। हिंदुओं को बलात् मुसलमान बनाया गया। हिंदुओं की खूबसूरत बहू-बेटियों को जबरदस्ती रखेल बनाया गया। यहां सवाल यह पैदा होता है कि क्या वास्तव में हिंदू इतना कायर, कमज़ोर और फुसफुसिया था कि बहुसंख्यक होकर भी उसमें विरोध की ताकत न थी ? हक़ीक़त कुछ भी हो, विडंबना यह है कि हमने अपनी उक्त कमज़ोरी, दुर्गति और बेइज़्ज़ती को और बढ़ा चढ़ा कर पेश और प्रचारित किया। जहां सौ हिंदू मरे वहां हमने एक हजार बतलाए, जहां लोग स्वेच्छा से मुसलमान बने, वहां हमने तलवार के ज़ोर पर और प्रलोभन का इलज़ाम लगाया। हमने अपनी बहू-बेटियों को भी बदनाम करने में कोई कसर न छोड़ी।

यहां लगे हाथों हिंदू मंदिरों की हालत पर भी एक सरसरी नज़र डाल ली जाए तो शायद कुछ अनुचित न होगा। मंदिरों में बेशुमार दौलत सोना, चांदी, हीरे, जवाहरात थे, जिनको लूट कर हज़ारों हाथियों, ऊंटों और बैलों पर लाद कर ले जाया गया था। लिखा है कि सोमनाथ मंदिर में घड़ियाल की जंजीर ही २०० मन सोने की थी। मंदिर में देवदासियां थीं, पुजारी थे, विलास-वासना थी, आडंबर और पाखंड था। धर्म और मंदिर की आड़ में न जाने क्या-क्या होता

था। विडंबना है कि हमने कभी यह ग़ौर ही नहीं किया कि आख़िर पूजास्थलों पर देवदासियों और बेशुमार दौलत हीरे-जवाहरात का भला क्या काम ? हमारी आस्थाओं और धारणाओं ने हमें निकम्मा और कायर बना दिया मगर हमने आज तक उन पर एक वैज्ञानिक दृष्टि डालने की ज़हमत गवारा न की।

उक्त लिखने का मेरा उद्देश्य मुस्लिम आक्रांताओं और उनके कृत्यों की तरफ़दारी करना हरगिज़ नहीं है। यहां मेरा उद्देश्य मात्र इतना है कि हम सच्चाई को समझने का प्रयास करें। जो इतिहास हम पढ़ रहे हैं, हम ग़ौर करें कि वह कितना निष्पक्ष और विश्वसनीय है। हम इतिहास का अध्ययन और विश्लेषण करने में तर्क और विवेक का इस्तेमाल करें। हम उन अंधविश्वासों और कर्मकांडों को छोड़ दें, जिनके कारण हम पीटते और अपमानित होते रहे हैं।

मानव जीवन की विडंबना

आधुनिक युग की वैज्ञानिक प्रगति स्तब्ध कर देने वाली है। इस प्रगति के पहिए की गति रोज़-ब-रोज़ तीव्र से तीव्रतर होती जा रही है। कैसी अजीब विडंबना है कि मनुष्य के चारों ओर रोशनी ही रोशनी है मगर उसके अंतर में घोर अंधेरा है। मनुष्य के चारों ओर भीड़ ही भीड़ है मगर उसके अंतर में वीरानी और सुनापन है। बाहर सुख-सामग्री के अंबार है, सुविधाओं के ढेर हैं, मगर अंतर में दरिद्रता है, आख़िर क्यों ?

जीवन की यह दारुण त्रासदी है। आज मनुष्य पर धन-दौलत का भूत इस तरह सवार हो गया है कि उसकी समूची चिंतन प्रक्रिया प्रदूषित और नकारात्मक हो गई है। धन-दौलत की प्रबल चाहत में न केवल नैतिक मूल्य गौण हो गए हैं, बल्कि मानव जीवन में मूल्यों का शून्यक उपस्थित हो गया है। भौतिकता के इस दौर में न संबंधों का कोई महत्व रह गया है और न रिश्ते-नातों का। आज मनुष्य की नाप-तोल उसके पेशे और कमाई से की जा रही है। जिसके पास पैसा है, आज वही विद्वान है, वही सम्मानीय है, समाज में उसी का रूतबा है, चाहे वह लूटेरा व कातिल ही क्यों न हो।

अगर हम बाजार से एक माटी का दीया खरीदते हैं तो उसे हर रूख से देखकर खरीदते हैं। मगर ज़िंदगी के मामले में इतने बेख़बर और लापरवाह है कि इसका कोई मूल्य नहीं समझते। हमारी ज़िंदगी का पल दर पल और कदम दर कदम हमें मौत की तरफ ले जा रहा है मगर हम इतनी बेफ़िक्री से ज़िंदगी गुज़ार रहे हैं गोया कि हमें इस दुनिया से कभी जाना ही नहीं है।

अक्सर देखा जाता है कि आदमी की रात-दिन की भागदौड़ केवल पैसे और पेट के लिए है। लोगों की बातचीत का मौजू खाने-कमाने और मौजमस्ती के सिवाय कुछ और दिखाई नहीं पड़ता।

जीवन के प्रति गंभीर चिंतन और सोच-विचार से अक्सर लोग खाली नज़र आते हैं। अधिकतर लोग ऐसे हैं जिनके ज़हन में इस विषय का सिरे से कोई तसव्वुर ही नहीं होता कि मानव जीवन का कोई उच्च लक्ष्य भी होता है या होना चाहिए। दुनियावीं मामलों में तो लोग काफ़ी समझदार और तेज़तर्रार देखे जाते हैं मगर जीवन के अभीष्ट (Aim) के विषय में उनके पास घिसी-पिटी और सड़ी-गली परंपरावादिता के सिवाय कुछ और नहीं होता।

अजीब विडंबना है कि लोग मालामाल तो होना चाहते हैं मगर काबिल और नेक बनना नहीं चाहते। दौलत कमाने के रास्ते में साधन की पवित्रता उनके लिए कोई अर्थ नहीं रखती। आज के दौर में नेकी और ईमानदारी की बात करना ठीक ऐसा है जैसा कि हम लोगों की फ़ितरत के ख़िलाफ़ बात कर रहे हों। विचित्र विडंबना है कि आदमी को सुख और सुकून की तो तलाश है मगर ऐसी जगह ढूंढ रहा है जहाँ केवल बेकारी व बेकली के सिवाय कुछ नहीं। भला कुकृत्यों और लूट-खसोट की परिणति कभी सुखदायी कैसे हो सकती है ? भला बबूल का बीज बोकर आम और अंगूर की ख़्वाहिश कैसे पूरी हो सकती है ?

इसे भी मानव जीवन की विडंबना ही कहेंगे कि आदमी को दूसरों की बुराइयां और कमज़ोरियां तो खूब नज़र आती हैं, मगर अपनी बुराइयां और खामियां उसे नज़र नहीं आती। आदमी दूसरों का आकलन तो खूब करना जानता है, मगर फुर्सत में कभी अपना आकलन नहीं करता। अक्सर देखने में आता है कि आदमी जिस फीते से अपने आपको नापता है, दूसरों को नापने के लिए उस फीते का इस्तेमाल नहीं करता। यह भी देखने में आता है कि आदमी खुद अच्छी औलाद साबित नहीं होता, अपनी औलाद के सामने ही अपने बूढ़े माँ-बाप की नाकद्री करता है, मगर अपनी औलाद से यह उम्मीद करता है कि उसकी औलाद बुढ़ापे में उसके साथ अच्छा सुलूक करें। एक सास अपनी बहू के साथ ऐसा सुलूक नहीं करती जैसा वह अपनी बेटी के लिए उसकी ससुराल में चाहती है। यह भी एक तथ्य है कि आदमी खुद भ्रष्ट होता है, मगर दूसरों को ईमानदारी का पाठ पढ़ाता है। आदमी की कथनी और करनी में ज़मीन आसमान का अंतर देखने में आता है। इसे विडंबना नहीं तो और क्या कहें ?

यह भी मानव जीवन की विडंबना ही है कि मनुष्य उस परम

सत्ता के लिए तर्क और सबूत चाहता है जिसके अस्तित्व की निशानियां और प्रमाण कदम-कदम और ज़र्रे-ज़र्रे में मौजूद हैं और आदमी अपनी खुली आंखों से देख भी रहा है। भला बिना किसी नियंता के इस असीम और अद्‌भुत ब्रह्मांड का नियमन कैसे हो सकता है ? इस अति विशाल सृष्टि की नियमबद्धता और एक सूत्रता क्या इस तथ्य का खुला सबूत नहीं है कि कोई अदृश्य शक्ति इसका संचालन कर रही है ? कुछ लोग दुनियावीं ऐतबार से इतने काबिल हुए हैं कि उन्होंने अपने विचारों और कार्यों से दुनिया के एक बड़े हिस्से को प्रभावित किया मगर उनकी अक्ल ने कभी ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार नहीं किया। इन लोगों की लम्बी सूची में कार्ल मार्क्स (१८१८-१८८३), फ्रीडरिक नीत्शे (१८४४-१६००), सिगमंड फ्रायड (१८५६-१६३६), बर्ट्रंड रसल (१८७२-१६७०), अलबर्ट आइंसटीन (१८७६-१६६५), डा. भीमराव अंबेडकर (१८६१-१६५६), पंडित जवाहर लाल नेहरु (१८८६-१६६४), मानवेन्द्र नाथ राय (१८८६-१६५४) आदि कुछ ऐसे नाम हैं जिन्होंने एक ऐसे सत्य का इंकार किया, जिसका इंकार इतनी बड़ी बेवकूफ़ी है जैसे कि कोई आदमी मृत्यु का इंकार करें और कहे कि उसे कभी मरना ही नहीं है। मृत्यु का सीधा सा मतलब ही यह है कि हमारा जीवन किसी अदृश्य सत्ता के अधीन है। आदमी मृत्यु का इंकार नहीं करता, मगर विडंबना है कि परम सत्ता का इंकार कर देता है।

यहां उक्त विषयों के साथ यह बात भी ग़ौर करने के काबिल है कि अगर आदमी की ज़िंदगी का उद्‌देश्य कमाना-खाना और मौजमस्ती के सिवाय कुछ और नहीं है, तो फिर जंगली जानवरों की ज़िंदगी आदमी की ज़िंदगी से कहीं अधिक बेहतर है और अगर कमाने-खाने और मौजमस्ती के सिवाय भी आदमी की ज़िंदगी का कोई और उच्च उद्‌देश्य है तो फिर उसे छोड़कर या भूलकर आदमी की ज़िंदगी जंगली जानवरों की ज़िंदगी से कहीं अधिक बदतर है।

कुछ लोग और समाज ऐसे हैं जो उस एक परम और चरम अदृश्य चेतन शक्ति को छोड़कर सूरज, चांद, तारे, मज़ार, नदी, वृक्ष, व्यक्ति, पशु आदि की पूजा-उपासना करते हैं। कैसी विचित्र विडंबना है कि लोग अपने हाथों से बनाई मूर्तियों को अपना इष्ट समझते हैं। पूजा-अर्चना के नाम पर मंदिरों में गाना-बजाना, नाचना होता है। हिंदू समाज में इतने देवी-देवता और पूजा पद्धतियाँ हैं कि शायद ही कोई समझ सके। असंख्य देवी देवताओं के बावजूद उपास्यों की संख्या रोज़-ब-रोज़ बढ़ती जा रही है। प्रतिवर्ष देवी-देवताओं के लुक और

डिज़ाइन बदल जाते हैं। हमारे देवी देवता भी वक्त के साथ आधुनिक (Modern) और साइंटिफिक होते जा रहे हैं। एक ईश्वर की पूजा अर्चना करके मनुष्य संतुष्ट ही नहीं है। संतुष्ट हो भी तो कैसे, जब उसे यह पता ही नहीं है कि वह क्या और क्यों कर रहा है ?

प्रत्येक व्यक्ति और समाज जिसकी धारणा और आराधना विशुद्ध रूप से एक ईश्वर के लिए न हो, वह अज्ञानी और अज्ञान पूर्ण समाज है। यह एक विशुद्ध सत्य है, इसमें संदेह की कतई कोई गुंजाइश नहीं है। विडंबना यह है कि मनुष्य उस एक परम शक्ति को समझने और मानने के लिए तैयार नहीं है। बस आंखे बंद कर उसे ही सत्य मान लेता है जिसे वो परंपरा में देखता आ रहा है। सत्य को झुठलाकर और मूल से मुंह मोड़कर भला मनुष्य कैसे संतुष्ट हो सकता है ? भला अपने हाथों बनाई भिन्न प्रकार की मूर्तियों के आगे गाना, बजाना, नाचना और फूल, फल, पत्ते आदि चढ़ाना धर्म और आराधना का हिस्सा कैसे हो सकता है ? यह सब ढोंग है। आख़िर यह बात हमारी समझ में क्यों नहीं आती ?

हिंदू समुदाय में विभिन्न प्रकार के व्रत-उपवासों का प्रचलन है। उपवास का अर्थ तो यह है कि जिस दिन का उपवास हो, उस दिन कुछ भी न खाया-पिया जाए, पानी भी नहीं। दिन की अवधि भोर होने से सूर्य अस्त होने तक है। मगर यह विडंबना है कि विभिन्न प्रकार के हिंदू धर्म अनुयायी उपवास की अवधि में कुछ पदार्थों को छोड़कर सब कुछ खाते-पीते हैं। उपवास के दिन पानी, चाय, दूध तो क्या, कोट्टू और सिंघाड़े के आटे के पराठे-पकौड़ी, आलू के बने आइटम, टिकिया, हलुवा, चिप्स आदि, पौसाई के चावल और साबूदाने की खीर आदि, फलाहार केला, सेब, संतरा, अनार, अमरूद, पपीता आदि, सलाद, खीरा, ककड़ी आदि, चौलाई के लड्डू, मिठाइयां आदि, काजू, मखाने, मूंगफली, अखरोट आदि सब कुछ खाया-पिया जाता है। उक्त आइटमों के साथ बीड़ी-सिगरेट, पान आदि की भी कोई मनाही नहीं है। ये सब आइटम सूर्य उदय होने के बाद और अस्त होने से पहले उसी अवधि में खाये-पिये जाते हैं, जिस अवधि का उपवास होता है। बस गेहूँ, चना, चावल, हल्दी और साधारण नमक आदि नहीं खाया जाता। साधारण नमक की जगह सेंधा नमक इस्तेमाल किया जाता है। अब ज़रा सोचिए! अगर उपवास के दिन सब कुछ खाया-पिया जा सकता है तो फिर उपवास कैसा? आख़िर उक्त विधि-निषेधों का मूल

स्रोत क्या है ? कहा जाता है कि उपवास के दिन अन्न नहीं खाया जाता और अन्न केवल गेहूं, चना, चावल, दाल, मक्का, हल्दी आदि भोज्य पदार्थ हैं। जबकि वास्तविकता यह है कि अन्न प्रत्येक भोज्य पदार्थ को कहते हैं। आख़िर इतनी सी बात हमारी समझ में क्यों नही आती कि उपवास का मतलब कुछ भी न खाने से है ? मगर हम चंद चीजों को छोड़कर सब कुछ खाते-पीते हैं। आख़िर ऐसे उपवास की हमारे जीवन में महत्व और उपयोगिता क्या है ? आख़िर हम सोचते क्यों नहीं ? कहीं अंधविश्वासों से हमारी चिंतन शक्ति जवाब तो नहीं दे गई है ? कहीं ऐसा तो नहीं है कि हम एक समुदाय विशेष के विरोध और द्वेष में ऐसा कर रहे हों कि वे अपने उपवास में कुछ नहीं खाते, हम सब कुछ खाएंगे। क्या धर्म के नाम पर हम अपनी मर्जी से कुछ भी करें हमारे लिए वही सत्य है ? क्या हमारी आस्थाओं और धारणाओं का कोई आधार नहीं है, जो हमारा मार्गदर्शन करें ?

हिंदू समाज में अनेक ऐसे रीति रिवाज और कर्मकांड प्रचलित हैं जो न तो धर्म का हिस्सा है और न ही सामाजिक दृष्टि से उनकी कोई उपयोगिता है। वे रीति-रिवाज केवल आडंबर और ढोंग हैं, मगर लोगों ने उन कर्मकांडों को धार्मिक रीति-रिवाज से जोड़ दिया है। धार्मिक त्योहारों के नाम पर ऐसी-ऐसी परंपराओं का निर्वाह किया जा रहा है कि जो न केवल मूर्खतापूर्ण है, बल्कि मानवता को शर्मसार करने वाली है। विडंबना यह है कि उन परंपराओं को निभाने में पूरा समाज पूरी निष्ठा और धार्मिकता के साथ संलिप्त और निमग्न है। वास्तविक धार्मिक प्रतिमानों और संदेशों से अनभिज्ञ लोग धर्म के नाम पर संस्कारहीन और अनैतिक आचरण करते हैं। धार्मिक त्योहारों में पूजा-अर्चना के नाम पर अनैतिक और अमर्यादित मौजमस्ती, नाचना, गाना-बजाना होता है। धर्म और अध्यात्म के नाम पर होली का हुड़दंग, अश्लीलता और मोज़मस्ती होती है। होली के दिन जहां शराब पी जाती है, वहीं दीपावली के दिन जुआ खेला जाता है। एक तरफ यज्ञ को पूजा और पर्यावरण शुद्धि का अनुष्ठान समझा जाता है, वहीं दीपावली के दिन वायु को विषाक्त और प्रदूषित करने को धर्म का हिस्सा समझा जाता है। आंकड़े बताते हैं कि लगभग २५०० से ३००० करोड़ रुपये का गंधक और पोटाश प्रतिवर्ष दीपावली के दिन वातावरण में घोल दिया जाता है।

कैसी विडंबना है कि जहाँ जैन समाज के लोग तीर्थंकर

महावीर स्वामी के निर्वाण दिवस को प्रतिवर्ष दीपावली के रूप में मनाते हैं, वहीं आर्यसमाजी स्वामी दयानंद सरस्वती के मृत्यु दिवस को उत्साह और खुशी के साथ मनाते हैं। विदित रहे कि दोनों महापुरुषों की मृत्यु दीपावली के दिन हुई थी। समाज में एक बात यह भी देखने में आ रही है कि शादी समारोह हो या बूढ़े व्यक्ति का मृतक भोज, दोनों में कोई अंतर देखने में नहीं आता। विचारणीय अवसरों पर भी लोगों की बातचीत का मौजू खाना-कमाना ही होता है।

एक नज़र भारतीय साधु समाज को देखिए, जो परिवार और समाज के दायित्व से बहुत दूर निठल्ली और ऐश परस्त ज़िंदगी जी रहा है। उनके अंदर अंधविश्वास, ढोंग और छल कपट कूट-कूट कर भरा होता है। भिन्न प्रकार के साधु जिनकी तादाद लगभग ७० लाख बताई जाती है, उन साधु महात्माओं में अधिकतर लोग अपराधी और अपराध प्रवृत्ति के होते हैं। उनके कृत्यों को देखकर सिर शर्म से झुक जाता है। उनके अंदर धर्म और नैतिकता का कोई लक्षण दिखाई नहीं पड़ता। नंगे और गंदे रहने को वे तप और तपस्या समझते हैं। शराब, सुलफा, भांग, गांजा पीने-खाने को वे धर्म और पुण्य का काम समझते हैं। यह बात भी किसी से छिपी नहीं है कि हिंदू-मंदिरों में स्त्रियों के सामने साधुओं का सुलफा, शराब पीकर नग्न तांडव करना और उत्पात मचाना साधारण सी बात है। मंदिरों की दशा दयनीय ही नहीं बल्कि चिंताजनक है। ग्रामीण क्षेत्रों में मंदिर सामूहिक नशा केन्द्र तो हैं ही, वहाँ महात्माओं द्वारा सट्टेबाजों को सट्टे भी बताए जाते हैं। हिंदू मंदिरों में धर्म और पूजा की आड़ में बड़े-बड़े लज्जाजनक और घिनौने कृत्य होते हैं। साधु लोग अपनी ढोंग और ठग विद्या से गांव की भोली भाली महिलाओं को अपने मोह जाल में फांस लेते हैं।

'सत्यार्थ प्रकाश' के निर्माता आचार्य स्वामी दयानंद सरस्वती नंगे रहा करते थे। कैसी अजीब विडंबना है कि हिंदू समाज में नग्नता और अश्लीलता को धर्म और अध्यात्म का हिस्सा समझा जाता है। अजंता, एलोरा, कोणार्क, खजुराहों आदि मंदिरों में कामबंध प्रतिमाओं को हिंदू संस्कृति की धरोहर माना जाता है। इन मंदिरों के विषय में कवि रामधारी सिंह दिनकर (१६०८-१६७४) ने अपनी मुख्य पुस्तक ''संस्कृति के चार अध्याय'' में लिखा है, ''कैसा रहा होगा वह समय और समाज, जिसके विश्वास की पताका, कोणार्क, पुरी, भुवनेश्वर और खजुराहों के मंडपों पर फहरा रही है ? मंडप के भीतर शिव और

शक्ति की प्रतिमाएं और मंडप के ऊपर नर-नारी समागम की नग्न मूर्तियां और काम के कर्म-चित्र, जिनकी ओर भाई-बहन एक साथ आंखे उठाकर नहीं देख सकते। इन मूर्तियों को देखकर आज का जनमानस शर्माता है। क्या उन दिनों कोई जनमत नहीं था ? आज का जनमत जनता बनाती है, उस समय का जनमत साधु-संन्यासी, राजा और राजदरबारी तैयार करते थे।''

आज हिंदू समाज में धार्मिक उपदेशों और प्रवचनकर्ताओं की बाढ़ सी आई हुई है। धार्मिक उपदेशों और प्रवचनों के नाम पर पेशेवर कथावाचक और उपदेशक किस्से-किवंदंतियां लोगों को सुनाते-समझाते हैं जिन्हें सुनकर श्रोतागण या तो भावुक हो रोने लगते हैं या फिर मन-मुग्ध हो नाचने-गाने लगते हैं। कथित उपदेशक जीवन जीने के ऐसे आसान रास्ते लोगों को बतलाते हैं जिससे न तो उनके जीवन की रोजमर्रा की लूट खसोट में रत्ती भर अंतर पड़ता है और न ही आचार-विचार में सुधार आता है। यहां सत्कर्म और आत्मशुद्धि को नहीं कर्मकांड को महत्व दिया जाता है जैसे गंगा में नहाने से सैकड़ों जन्मों के पाप दूर हो जाते हैं, गाय की सेवा करने से मनुष्य करोड़ों-करोड़ों जन्मों के पापों से तर हो जाता है, गुरु सेवा और भक्ति से मनुष्य को परमेश्वर के दर्शन हो जाते हैं। वास्तविकता से क़तई अनभिज्ञ भोली-भाली जनता तथाकथित परमपूज्यों के श्रीमुख से निकले शब्दों को ही अंतिम सत्य मान लेती है, क्योंकि परम पूज्यों से तर्क-वितर्क और संवाद करना पाप और अपराध समझा जाता है। धर्म के मामले में हम इतने अंधविश्वासी व रूढ़िवादी हैं कि धर्म से संबंधित किसी विषय के साथ क्या व क्यों जुड़ते ही हम भौचक्के से खड़े रह जाते हैं। जब हम विज्ञान और कानून आदि में तर्क-वितर्क कर सकते हैं तो धर्म में क्यों नहीं कर सकते?

हिंदू धार्मिक प्रतिमानों में ऊहापोह की विचित्र स्थिति देखने में आती है। महात्मा गौतम बुद्ध ने कहा ''वेद-वेदान्त में सत्य का लवलेश तक नहीं है।'' फिर भी बुद्ध देव को सबसे बड़ा वेदान्ती और हिंदुत्व का शोधक कहा गया। डॉ. अंबेडकर का चिंतन और दर्शन हिंदुत्व विरोधी रहा है। उन्होंने न केवल हिंदू धर्म की घोर निंदा और कटु आलोचना की है बल्कि उन्होंने मुनस्मृति में सार्वजनिक रूप से आग भी लगाई थी। डॉ. अंबेडकर (१८९१-१९५६) ने कहा था, ''मैं हिंदू धर्म में पैदा हुआ हूँ, यह मेरे अधिकार में नहीं था, मगर मैं इस

धर्म में मरूंगा नहीं।'' इन परिस्थितियों में डॉ. अंबेडकर ने पाँच लाख व्यक्तियों के साथ १४ अक्टूबर सन् १९५६ को बौद्ध धर्म ग्रहण कर लिया। इसके बावजूद भी आज के हिंदू विद्वान और चिंतक डॉ. अंबेडकर को हिंदुत्व का प्रखर चिंतक, हितैषी और समर्थक कह रहे हैं। क्या यह विडंबना नहीं है ?

हिंदू धर्म में ईश्वरवाद और अनीश्वरवाद दोनों का, सर्वेश्वरवाद और बहुदेववाद दोनों का, आवागमन और परलोकवाद दोनों का, शाकाहार और मांसाहार दोनों का ऐसा अद्‌भुत समावेश किया गया है कि मैं नहीं समझ पा रहा हूँ कि यह एक प्राचीन सभ्यता का असीम औदार्य है या शेखचिल्लीपन। वेदों और उपनिषदों की आवाज एक नहीं है। रामायण और गीता एक दूसरे से भिन्न हैं। उत्तर का हिंदुत्व दक्षिण से भिन्न है। स्वामी दयानंद का हिंदुत्व स्वामी विवेकानन्द से भिन्न है। १९वीं सदी में जहां आर्य समाज के संस्थापक ने हिंदुत्व का प्रतिनिधित्व करते हुए मूर्ति पूजा, व्रत, उपवास, अवतारवाद, तीर्थयात्रा आदि को पाखंड और मूर्खतापूर्ण बताया वहीं रामकृष्ण परमहंस (१८३६-१८८६) और रामकृष्ण मिशन के संस्थापक कर्मठ वेदांती स्वामी विवेकानंद (१८६३-१९०२) ने समग्र हिंदुत्व का प्रतिनिधित्व करते हुए मूर्ति पूजा, व्रत, उपवास, अवतारवाद, तीर्थयात्रा आदि सभी को सार्थक और अनिवार्य बताया है। हिंदू धर्म की इतनी स्थापनाएं और उपस्थापनाएं हैं कि समझना और समझाना तथा इसकी कोई खूबी बयान करना अत्यंत मुश्किल काम है।

कठोपनिषद् की उक्ति है, ''न वित्तेनतर्पणीयों मनुष्यः।'' मनुष्य धन दौलत से कभी तृप्त नहीं हो सकता। एक हदीस है, ''अगर मनुष्य को सोने की एक घाटी दे दी जाए तो वह दूसरी की तमन्ना करेगा।'' मगर मनुष्य सुख और सुकून के लिए धन-दौलत के पीछे आंख मूंदकर भाग रहा है। आज दौलत आदमी की सबसे बड़ी खूबी हो गई है। सद्‌गुण, सदभाव और सदाचार सब गुज़रे ज़माने की वस्तु बन गई है। आज मनुष्य जीवन की तुच्छताओं के गोरखधंधे में ऐसा उलझकर रह गया है कि उसे जीवन की वास्तविकता के बारे में सोचने की फुर्सत ही नहीं है। जीवन की यह दारूण त्रासदी है कि जीवन के मूलभूत अभिप्राय को विस्मृत और उपेक्षित करके मनुष्य शारीरिक सुखभोग में लीन हो गया है, जबकि मानव जीवन में महत्वपूर्ण चीज़ अभीष्ट (Aim) है, शारीरिक सुखभोग नहीं। मौत की एक सख़्ती

मनुष्य जीवन की तमाम खुशियों और ऐशोआराम को खाक़ में मिला देती है। अतः सच यही है कि हम दुनिया की मूर्खतापूर्ण विलासिताओं में सिर के बल कूद-कूद कर कितने भी गोते लगा लें, अगर हमने जीवन के अभीष्ट (Aim) को तलाश नहीं किया तो हमारे जीवन का महत्व कीड़े-मकोड़ों से अधिक नहीं है। ईश्वरीय सत्ता की अवहेलना और जीवन के असल उद्देश्य की उपेक्षा हमें आर्थिक और वैज्ञानिक उन्नति के शिखर पर तो ले जा सकती है, मगर मनुष्य जीवन का अभीष्ट (Aim) प्राप्त नहीं करा सकती।

सहायक ग्रंथ सूची

१. सत्यार्थ प्रकाश-संस्करण-२००६, संपादक-पंडित भगवद्दत्त (रिसर्च स्कॉलर)।
२. सत्यार्थ प्रकाश (उर्दू)- पं० श्री चमूपति (एम० ए०)
३. महर्षि दयानंद का जीवन चरित्र - पंडित लेखराज कृत आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, नई दिल्ली।
४. ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका - स्वामी दयानंद सरस्वती।
५. ऋग्वेद संहिता - हिंदी भाष्य वैद्यनाथ शास्त्री, सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, नई दिल्ली।
६. यजुर्वेद संहिता - स्वामी दयानंद और श्रीराम शर्मा कृत अनुवाद।
७. मनुस्मृति - टीकाकार आचार्य रामानंद सरस्वती और आचार्य वादरायण।
८. वाल्मीकिय रामायण - (हिंदी भाषान्तर सहित) दो खण्ड, अनुवादक साहित्याचार्य पाण्डेय पंडित रामनारायण दत्त शास्त्री 'राम'।
९. महाभारत - हिंदी टीका सहित छः खण्ड गीता प्रेस गोरखपुर।
१०. गीता - हिंदी अनुवाद गीता प्रेस गोरखपुर।
११. रामचरितमानस - हिंदी अनुवाद गीता प्रेस गोरखपुर।
१२. छांदोग्य उपनिषद्।
१३. ब्रह्मसूत्र शांकर भाष्य।
१४. भारतीय दर्शन - डा. सर्वपल्ली राधाकृष्णन।

१५. भारतीय दर्शन - प्रो० जदुनाथ सिन्हा।
१६. संस्कृति के चार अध्याय - रामधारी सिंह दिनकर।
१७. हिंदुस्तान की कहानी - पं० जवाहर लाल नेहरु।
१८. वैदिक साहित्य और संस्कृति का स्वरूप - ओम प्रकाश पाण्डेय।
१९. क्या बालू की भीत पर खड़ा है हिंदू धर्म ? - डा. सुरेन्द्र कुमार शर्मा 'अज्ञात'।
२०. दीक्षालोक, संपादक-डॉ० विष्णु दत्त राकेश, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार।
२१. श्रुति विचार सप्तक, संपादक-डॉ० विष्णु दत्त राकेश, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार।
२२. वैदिक संस्कृति का संदेश-डॉ० सत्यव्रत सिद्धांतालंकार
२३. कुरआन मजीद (हिन्दी), मौ० फ़ारूख़ ख़ां, इस्लामी साहित्य प्रकाशन, नई दिल्ली।
२४. तफ़्हीमुल कुरआन (उर्दू) छः खण्ड, मौलाना सैय्यद अबुल आला मौदुदी, मर्कजी मकतबा इस्लामी, नई दिल्ली।
२५. तज़्कीरुल कुरआन (उर्दू), मौलाना वहीदुद्दीन खां, गुडवर्ड बुक प्रकाशन निज़ामुददीन, नई दिल्ली।
२६. The Holy Quran (English) Revised and Edited by - The Presidency of Eslamic Researches Ifta.